संपादन:
राजेश खिंदरी
रश्मि पालीवाल
सी. एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान

सह संपादक:
माधव केलकर
दीपक वर्मा

चित्रांकन:
उमेश गौर
धनंजय खिरवड़कर
शिवेन्द्र पंड्या

सहयोग:
जया विवेक
बृजेश सिंह
रामभरोस यादव

संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-7, सितम्बर-अक्टूबर 1995

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001
फोन: 07574 – 3518

वार्षिक सदस्यता (6 अंक): 35 रुपए
ड्राफ्ट, मनीऑर्डर एकलव्य के नाम से भेजें

मुखपृष्ठ: बिजली की कौंध। (विस्तृत लेख पृष्ठ 60 पर)
पिछला आवरण: इनामगांव से मिले अनाज भरने के घड़े। (विस्तृत लेख पृष्ठ 9 पर)

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित
संदर्भ में व्यक्त मतों से मानव संसाधन विकास मंत्रालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है

बच्चों की समझ 21

बच्चों को अपने आसपास की प्रकृति की कितनी समझ है। वो कितना कुछ ध्यान से देखते हैं, महसूस करते हैं और याद रख पाते हैं। इसी को लेकर ब्रिटेन के कुछ स्कूलों में आठ से दस साल तक के बच्चों के बीच किए गए सर्वे की रिपोर्ट। इस तरह की रिपोर्टों से जहां हम सर्वे करने के तरीकों और उसके महत्व को समझ सकते हैं वहीं पाठ्यक्रम की कमियों को भी सामने लाया जा सकता है।

सात अजूबे इस दुनिया के. 37

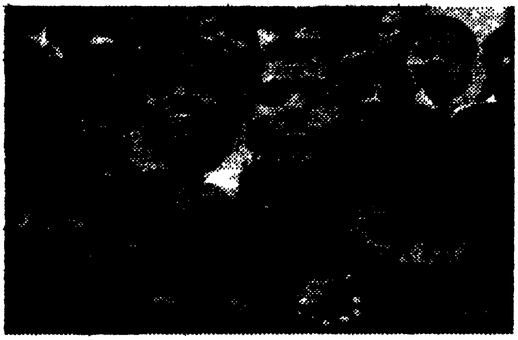

बेबीलोन के झूलते बगीचे, गीज़ा का पिरामिड, सिकंदरिया का प्रकाश स्तंभ........ वो दुनिया के सात आश्चर्य। अधिकतर तो मिट चुके हैं। लेकिन अब अगर फिर से सात आश्चर्यों की नई फेहरिस्त बनाई जाए तो कौन-कौन शामिल होगा इसमें?

जब ऐसी ही एक फेहरिस्त बनाने की बात एक वैज्ञानिक से की गई तो उसने लिस्ट में जिन्हें रखा उनमें से एक था इंसानी बच्चा। भला क्यों!

जब हैंडपंप बिगड़े तो. 75

हमारे देश में पीने के पानी की समस्या बहुत विकट है। इसी दिक्कत के निदान के लिए लगे हैं हैंडपंप। लेकिन आमतौर पर ये भी खराब पड़े रहते हैं। सरकारी मिस्त्रियों की बाट जोहते। लेकिन थोड़ी-सी जानकारी और कुछ औज़ारों की मदद से इन्हें ठीक करने की व्यवस्था गांव, मोहल्ले में ही की जा सकती है। इसी दिशा में काम कर रही है देवास जिले में एक संस्था 'समाज प्रगति सहयोग'। इसने आदिवासी इलाकों में महिलाओं को हैंडपंप सुधारने के काम में प्रशिक्षित किया है। हैंडपंप के सिद्धांत, क्रियाकलाप और सुधारने के तरीके पर यह रिपोर्ट।

इस अंक में

आपने लिखा..... 2
एक नए तरीके की पढ़ाई..... 7
खोद निकाला एक गांव..... 9
बच्चों की समझ..... 21
परमाणु भार की गुत्थी..... 27
सात अजूबे इस दुनिया के..... 37
जो गौरीशंकर की समझ में न आए.. 47
शिक्षक प्रशिक्षण और कहानी.... 57
बिजली और आवेश..... 60
सवालीराम..... 70
ज़रा सिर तो खुजलाइए..... 74
जब हैंडपंप बिगड़े तो..... 75
डाइनोसौर का अंडा..... 85
एक परजीवी – चंदन..... 96

आपने लिखा

प्रिय संपादक,

छठवें अंक में परसाई जी की कृति 'हम तो परभाकर हैं जी' तथा कहानी 'मिसेज डिसूज़ा के नाम' ने काफी प्रभावित किया। वास्तव में हम या तो बच्चों पर सख्ती करते हैं या स्वयं पर। हम अभी तक अध्ययन को सहज तरीके से नहीं ले पाए हैं। सारा कुछ एक तनाव भरे वातावरण में घटित होता रहता है। पांचवें और छठवें अंक में इब्ने इंशा की टिप्पणियां रोचक लगीं। इन्हें जारी रखिए।

दिलीप झा
शास. उ. मा. विद्यालय, तामा सिवनी
रायपुर, म. प्र.

प्रिय संपादक,

पत्रिका की कुछ ही रचनाएं मैंने अभी पढ़ी हैं। पत्रिका की भाषा और अनुवाद दोनों साफ सुथरे तो हैं लेकिन उन्हें कुछ और मुहावरेदार बनाइए। पत्रिका में सामग्री को पेश करने के ढंग में कुछ रोचकता होने के बावजूद गंभीरता ही ज़्यादा लगी। रचनात्मकता और रोचकता और बढ़े तो पत्रिका से आत्मीयता भी बढ़ेगी।

वीर भारत तलवार
जे. एन. यू., नई दिल्ली

प्रिय संपादक,

संदर्भ के अंक बहुत सहेजकर रखता हूं। मैं पत्रिका के लिए एक सुझाव देना चाहता हूं

पढ़ाते-पढ़ाते सीख रहा हूं इतिहास

प्रिय संपादक,

छठवें अंक में प्रकाशित 'फाइनमेन' और 'सुब्रह्मण्यन चंद्रशेखर' पर लेख और उनके संस्मरण काफी पसंद आए। साथ ही इतिहास को लेकर सुझाई गई गतिविधि कि कैसे इतिहास में जानकारी खोजते हैं। इसे हम कल करेंगे। विद्यार्थियों को इसके बारे में पहले से बता दिया था। वे काफी उत्साहित थे। गतिविधि पूरी हो जाने पर विस्तार से लिखूंगा।

संदर्भ के एक अन्य अंक में टॉलुंड आदमी को लेकर एक गतिविधि थी। वह मैंने अपनी कक्षा में करवाई थी। बेहद उत्साहजनक भागीदारी मिलने के साथ-साथ विद्यार्थियों में इतिहास के प्रति थोड़ी-सी रुचि जागी। कुछेक बार उनको काल्पनिक प्रश्न देकर कि वे किसी परिस्थिति में क्या करते, यह तथ्य जो दिया गया उसके क्या साक्ष्य हैं, आदि खोजने का प्रयास करता हूं पर पाठ्यक्रम पूरा करने का दबाव और मात्र जानकारियों से भरी किताबें खुद को भी बोर कर देती हैं। मूलतः मैं राजनीति विज्ञान का अध्यापक हूं और साथ में इतिहास भी पढ़ाना आरंभ किया। बेहद मजा आ रहा है, पढ़ाते-पढ़ाते सीख रहा हूं इतिहास को।

कई बार लगता है (ग्यारहवीं कक्षा को पढ़ाते हुए) कि इतने साल इतिहास पढ़ने के बाद भी छात्रों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव है। उनके बीच सांप्रदायिक दृष्टिकोण साफ नज़र आता है। यह तो समझ में आता है कि इस प्रक्रिया से लड़ना होगा पर साथ ही इतिहास की शिक्षा की भी एक भूमिका महसूस होती है।

मनीष जैन, महावीर सीनियर मॉडल स्कूल
नई दिल्ली

कि पत्रिका में विज्ञान नाटिकाओं को भी स्थान दीजिए। साथ ही कुछ प्रचलित शब्दों जैसे मुद्रा स्फीति या इससे मिलते-जुलते पारिभाषिक शब्दों के बारे में विस्तार से बताइए।

क्योंकि इन शब्दों को हम सुनते तो रोज़ हैं लेकिन इनके व्यापक अर्थ हमें मालूम नहीं होते।

गोविंद उधले
शाजापुर, म. प्र.

प्रिय संपादक,

संदर्भ का जुलाई-अगस्त का अंक पढ़ा। 'सवा छोटा चौथाई बड़ा' लेख अच्छा लगा। वास्तव में बड़ी ही रोचक बात का सर्वेक्षण किया गया। यह सच है कि अभी भी बहुत से बच्चे 7/2, 5/4, 3/4 का मतलब नहीं जानते।

हरिशंकर परसाई की रचना 'हम तो परभाकर हैं जी' के परिप्रेक्ष्य में आपने लिखा है ये उनकी स्वयं लिखित जीवनी है। पर स्वयं लिखित तो आत्मकथा होती है। आपकी इस बात को हम समझ नहीं पा रहे हैं।

'चकमक क्लब' हिरनखेड़ा
ज़िला होशंगाबाद, म. प्र.

प्रिय संपादक,

बहुत सुंदर पत्रिका है और आप लोग इसके लिए सार्थक लेख तैयार करने के लिए

लेखक ने गुस्सा ......

प्रिय संपादक,

संदर्भ में छठवें अंक में छपा 'ब्राज़ील में फाइनमेन' लेख विज्ञान प्रेमियों के लिए प्रेरणादायक है। इसी तरह सुशील जोशी का लेख 'विज्ञान में खाली स्थान का महत्व' भी ज्ञानवर्धक एवं प्रभावी लगा। सवालीराम के उत्तरों में प्रश्न को जबरन भारी बनाने का प्रयास किया है।

मीनूभाई परबिया जी द्वारा प्रस्तुत लेख 'कौन पत्ती, कौन तना और कौन फूल' की भूमिका शुरुआत बचकाना लगी। 'अदरक को जड़ की जगह तना कह देते हैं, प्याज़ को पत्तियां' आदि जैसी बातें लेख में पढ़कर ऐसा लगा मानो दूसरे विद्वान कुछ जानते ही नहीं।

लेख पढ़कर मैंने भी अदरक की आड़ी काट काटकर अवलोकन किया और पाया कि उसकी बनावट भी एक-बीजपत्री तने के समान है न कि किसी जड़ के समान।

ए. सी. दत्त और प्रकाश नारायण सक्सेना की वनस्पति शास्त्र में अदरक को तने का रूपांतरण राइज़ोम, आलू को तने का रूपांतरण ट्यूमर, प्याज़ को तने का रूपांतरण बल्ब और नागफनी को तने का रूपांतरण पर्णकाय स्तम्भ बताने के साथ तर्कसंगत ढंग से समझाया गया है। इनके अलावा और भी वनस्पति विज्ञान के विद्वान लेखकों ने इसी प्रकार की जानकारियां लिखी हैं।

ऐसा तो नहीं कि इनके द्वारा लिखा हुआ अभी तक प्रामाणिक नहीं था और यह सब गलत ही पढ़ते और पढ़ाते चले आ रहे हैं। वैसे भूमिका को छोड़कर परबिया जी ने लेख में शिक्षाप्रद जानकारियां देकर सीखने की एक दिशा देने का सराहनीय प्रयास किया है।

इसमें दो मत नहीं कि संदर्भ विभिन्न प्रेरणादाई जानकारियों का एक खज़ाना है।

एस. एन. साहू, शिक्षक
शासकीय आर. एन. ए. उ. मा. विद्यालय
पिपरिया, ज़िला होशंगाबाद, म. प्र.

अब कैसे सुलझे बात.........

संदर्भ के जुलाई-अगस्त अंक में कुमकुम रॉय का लेख 'पुराने समय के बारे में' पढ़ा। लेख में बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया गया था कि प्रत्येक स्रोत सामग्री की अपनी सीमाएं होती हैं और हरेक स्रोत सामग्री की जांच-पड़ताल करनी चाहिए। लेख में जो उदाहरण दिए गए हैं वे तो ठीक ही हैं लेकिन मैं एक और बेहतर उदाहरण देना चाहूंगी। यह वाकया मोहम्मद तुगलक के गद्दी-नशीन होने से जुड़ा है। खास बात है कि इस वाकए को उस समय के इतिहास लेखकों ने किस रूप में लिया।

घटना कुछ यूं है – सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक (मोहम्मद तुगलक का पिता) बंगाल को फतह करके दिल्ली लौट रहा था। मोहम्मद ने अपने पिता के स्वागत के लिए दिल्ली से कुछ दूर अफगानपुर में लकड़ी का एक स्वागत भवन तैयार करवाया। सुल्तान का ज़ोरदार स्वागत किया गया। थोड़ी देर बाद स्वागत भवन हाथियों का धक्का लगने से गिर पड़ा और गयासुद्दीन दबकर मारा गया। और चंद रोज़ बाद मोहम्मद तुगलक सुल्तान बन गया।

अब देखिए अलग-अलग इतिहासकार इस घटना के बारे में क्या लिखते हैं:

बरनी – स्वागत भवन ढहने का कारण बिजली गिरना बताता है।

इसामी – ने इस घटना को मोहम्मद तुगलक का षडयंत्र करार दिया है।

इब्ने बतूता – ने इस घटना को विस्तार से बताया है। बतूता को इस घटना की जानकारी शेख रुकनुद्दीन ने दी जो स्वागत भवन में था। बतूता लिखता है कि स्वागत भवन कुछ इस तरह से बनाया गया था कि उसकी एक खास जगह पर हाथी टक्कर मारे तो सारा भवन गिर पड़ता। इस तरह गयासुद्दीन को षडयंत्र से मारा गया।

सूफी साहित्य – में बताया गया है कि सुल्तान दैवी शाप से मारा गया। इस बारे में सुल्तान गयासुद्दीन और शेख निज़ामुद्दीन औलिया के तनावपूर्ण संबंध तथा निज़ामुद्दीन की प्रसिद्ध उक्ति – 'हनूज दिल्ली दूर अस्त' (अभी दिल्ली दूर है) का खासतौर पर ज़िक्र है।

15 वीं सदी का इतिहास लेखक सरहिन्दी लिखता है कि भवन दैवी प्रकोप से गिरा था। अकबर के दरबारी अबुल फज़ल और बदायूनी ने भी मोहम्मद तुगलक को पितृ-हन्ता माना है।

उस समय के इतिहास लेखकों के परस्पर विरोधी विचारों से मामला और भी पेचीदा हो जाता है कि सच कैसे मालूम करें क्योंकि हो सकता है कि मौत एक महज़ इत्तेफाक हो। लेकिन वो लोग जो सुल्तान की मौत को एक साजिश मानते हैं उनकी बात इसलिए सच लगती है क्योंकि दिल्ली सल्तनत के उस दौर में इस तरह से गद्दी-नशीन होने के कई वाकिए हुए हैं।

गद्दी-नशीन होने के बाद मोहम्मद तुगलक ने काफी दौलत और ओहदे बांटकर लोगों को खुश करने की कोशिश की थी।

एक बात जो बार-बार कचोटती है कि स्वागत भवन बनवाने वाले अहमद अयाज़ को मोहम्मद तुगलक ने ख्वाजा-ए-जहां की उपाधि से नवाज़ा, साथ ही उसे शाहना-ए-इमारत का ओहदा भी दिया।

यह तमाम जानकारियां सामने आने के बाद यह पता कर पाना खासा कठिन हो जाता है

कि सच क्या है? क्योंकि गयासुद्दीन की मौत एक हादसा भी हो सकती है और एक साजिश भी हो सकती है।

पद्मजा झा
जबलपुर, म. प्र.

'ऐतिहासिक असलियत'

इस पत्र में उठाया गया सवाल एकदम वाजिब है कि इतने तरह-तरह के मत होते हुए 'ऐतिहासिक असलियत' का पता कैसे लगाया जाए। इसीलिए कुमकुम रॉय के लेख में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि 'ऐतिहासिक तथ्यों' के बारे में अधिकतम स्रोतों से जानकारी प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए और उन स्रोतों की भी जांच-पड़ताल की जानी चाहिए।

इस घटना से जुड़े हुए कुछ और तथ्य इस प्रकार हैं (जिनका ज़िक्र उपरोक्त पत्र में भी किया गया है):

1. *पत्र में दिया गया बरनी का अनुवाद सही नहीं है। बरनी के अनुसार, "जिस समय सुल्तान....भोजन कर चुका था, तो दैवी विपत्ति का वज्र पृथ्वी निवासियों पर गिरा। सायबान की छत... अचानक सुल्तान के ऊपर गिरी।" ज़ाहिर है कि बरनी वज्रपात को एक आकस्मिक उपमा के रूप में देता है, न कि कारण के रूप में।*
2. *इसामी ने भी इस घटना के बारे में दो बातें कहीं हैं — पहले उसने कहा है कि सुल्तान ने*

संदर्भ

सजिल्द

अब तक संदर्भ के छह अंक प्रकाशित हो चुके हैं। ये सभी अंक अब एक साथ सजिल्द पुस्तक की शक्ल में उपलब्ध हैं। उपलब्ध अंकों की संख्या सीमित है। इन अंकों में प्रकाशित सामग्री का विषयवार इंडेक्स सजिल्द संस्करण के साथ है। इस संस्करण का मूल्य 60 रुपए (डाकखर्च सहित) है। इसे मंगवाने के लिए राशि कृपया डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें। ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें।

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद — 461 001

हाथियों की दौड़ करवाई थी जिसके कारण स्वागत भवन गिर गया।

फिर उसने यह कहकर कि, "यह हाल कुछ लोगों द्वारा इस प्रकार भी बताया जाता है ......" 'षड़यंत्र' वाला पहलू जोड़ा।

वैसे यह गौर तलब है कि इसामी मोहम्मद तुगलक को बिल्कुल भी पसंद नहीं करता था।

3. इब्ने बतूता इस घटना के 6-7 साल बाद हिंदुस्तान आया और उसने लोगों की सुनी-सुनाई बातों को ही लिखा है।

इसलिए उसे कितनी गंभीरता से लें, इस पर विचार करना चाहिए।

4. सूफी वाकया तो सही हो ही नहीं सकता क्योंकि इस घटना के समय 'दिल्ली अभी दूर है' कथन कहने वाले शेख निज़ामुद्दीन खुद मरणासन्न थे। वे 40 दिन से खाना छोड़कर ध्यानावस्था में थे और लगभग उसी समय उनकी मृत्यु हो गई।

और अंत में प्रश्न उठता है कि यह सवाल कि 'मोहम्मद तुगलक ने अपने पिता गयासुद्दीन तुगलक की हत्या की' कितना महत्वपूर्ण है। इसके बारे में पक्की जानकारी मिलने से हम ज़्यादा-से-ज़्यादा मोहम्मद तुगलक के चरित्र के बारे में कुछ कह सकते हैं। अन्यथा हमें मालूम ही है कि मोहम्मद तुगलक या उस समय के अन्य राजा ज़रा-सी बात पर कईयों के सिर कलम करवा देते थे — चाहे वह उनके जन्मदाता ही क्यों न हों

संपादक

कड़ी मेहनत भी कर रहे हो। दुलारी के साथ मिलकर मैंने 'मानसरोवर झील का दैत्य' कहानी पढ़ी और उसे पढ़कर गदगद हो गए। सुशील जोशी का भावानुवाद बेहतरीन था। जे. बी. एस. हाल्डेन की मशहूर कृति My Friend Mr. Leakey की कुछ कहानियां इस तरह भावानुवाद करके अवश्य छापें। उनकी एक कहानी 'रेट्स' बच्चों और बूढ़ों को पसंद आएगी।

अरविंद गुप्ता
नई दिल्ली

प्रिय संपादक,

संदर्भ के दो-तीन अंक मैंने पढ़े जो मुझे अच्छे लगे। संदर्भ एक द्वैमासिक पत्रिका है इस हिसाब से संदर्भ का आकार छोटा प्रतीत होता है और इसमें प्रकाशित सामग्री भी कम लगती है। प्रकाशित लेखों में केवल वैज्ञानिक लेख ही न देकर कला, साहित्य एवं भाषा के लेख भी प्रकाशित किए जाएं ताकि पत्रिका विज्ञान एवं कला विषयों के शिक्षकों के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध हो सके।

राजेश मुदाफले, शिक्षक
अंबा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
आष्टा, ज़िला बैतूल, म. प्र.

प्रिय संपादक,

विनम्रतापूर्वक कुछ निवेदन है। संदर्भ में कुछ निबंधों की भाषा सामान्य स्तर से ऊंची लगी हालांकि शास्त्रीय विचारों की अभिव्यक्ति के लिए शास्त्रीय भाषा आवश्यक है।

स्वानुभव के लिए प्रयोग आवश्यक है जिसकी उपेक्षा हर स्तर पर हो रही है। सभी छोटे रास्तों को अख्तियार कर रहे हैं अतः अनुभवों की आपबीती बताने के लिए पत्रिका में कुछ पेज आरक्षित रखिए। और साथ ही पत्रिका के लिए कुछ अनुवाद ही पर्याप्त नहीं हैं।

नरोत्तम शर्मा
व्याख्याता, डाइट बालाघाट, म. प्र.

कुछ स्मृतियां

एक नए तरीके की पढ़ाई की

अनुपम गेरा

"बिना परीक्षा के मूल्यांकन का तरीका क्या है? बड़ा सीधा-सा है, हर रोज़ जो विषय विद्यार्थियों को पढ़ाए जाते हैं उनमें विद्यार्थी की कैसी भागीदारी रहती है। ऐसा करने से मूल्यांकन साल में एक बार की बजाए रोज़ होता है"

इसी साल पहली मई से चार मई तक मैं जयपुर में 'दिगंतर' समूह के बीच रही। उनके द्वारा चलाई जा रही चार प्राथमिक शालाओं में से दो शालाओं (बन्धयाली और रतवाली गांव की) में मैंने अध्यापकों और बच्चों के बीच कुछ समय बिताया। वहीं के अपने अनुभव बांटना चाहूंगी।

सुबह ठीक आठ बजे जब सब विद्यार्थी और अध्यापक स्कूल पहुंच जाते हैं तो शुरू होता है खूब जमकर सफाई का कार्यक्रम। शिक्षक और विद्यार्थी दोनों मिलकर पूरे स्कूल की सफाई करते हैं। सफाई के बाद मैदान में 'असेंम्बली' होती है जिसमें बच्चे और शिक्षक गोल चक्कर बनाकर बैठ जाते हैं। पहले, दो मिनट का मौन होता है और उसके बाद कुछ अध्यापक बच्चों के बीच कविता या कोई नाटक आदि करते हैं। मकसद होता है — बच्चों की भाषा के विकास के साथ-साथ उनकी झिझक और हिचक को दूर करना। नाटक के बाद उछलते-कूदते, नाटक के कुछ वाक्य ज़ोर-ज़ोर से बोलते बच्चे अपने-अपने समूहों में चले जाते हैं।

इन शालाओं में कक्षा के स्थान पर समूह हैं और समूहों का आधार है कि बच्चा पढ़ाए गई चीज़ों को कितना समझ पाया है। उनकी इस समझ का मूल्यांकन अध्यापक ही करते हैं और वह भी बच्चों की बिना कोई औपचारिक परीक्षा लिए। प्रश्न उठता है कि बिना परीक्षा के मूल्यांकन का तरीका क्या है? बड़ा सीधा-सा है, हर रोज़ जो विषय विद्यार्थियों को पढ़ाए जाते हैं उनमें विद्यार्थी की कैसी भागीदारी रहती है। ऐसा करने से मूल्यांकन साल में एक बार की बजाए

रोज़ होता है। हां, पांचवी की परीक्षा इन बच्चों को औपचारिक स्कूल के बच्चों के समान ही देनी होती है पर उससे पहले उन्हें किसी परीक्षा में नहीं बैठना होता। है न मज़ेदार बात – न परीक्षा का डर, न दबाव और न ही आपस में प्रतिस्पर्द्धा।

खैर, तो हम बच्चों के साथ उनके समूहों में जा रहे थे। अपनी मेहनत से सजाए और साफ किए गए कमरों में बैठे हुए विद्यार्थियों के अलग-अलग समूह। 'गगन समूह' सुलेख लिख रहा है तो 'सूरज समूह' ज़ोर-ज़ोर से कहानियां पढ़ रहा है। वहीं दूसरी ओर 'सदाबहार समूह' अपनी अध्यापिका के साथ पहेली-पहेली खेल रहा है। नीचे ज़मीन पर शिक्षक और विद्यार्थियों को एक साथ दोस्तों जैसा बैठे देखना मुझे बहुत अच्छा लगा। खेल ही खेल में चल रही थी शिक्षा। विषय पढ़ाए जाते हैं – हिन्दी, अंग्रेज़ी, गणित, पर्यावरण, कला और नाटक। सप्ताह में एक दिन खेल कूद का होता है।

एक और निराली बात है इन शालाओं में; वह यह कि विद्यार्थी अध्यापकों को उनके नाम से पुकारते हैं। इस बारे में मैंने जब शिक्षकों से बात की तो उन्होंने बताया कि ऐसा शिक्षक-विद्यार्थी के संबंध को आत्मीय बनाने के लिए किया गया है। हालांकि ऐसा नहीं है कि नाम लेकर बुलाने से विद्यार्थियों के मन में शिक्षक के प्रति आदर-भाव कम है। शिक्षकों का खुद का मानना था कि 'मास्साब' शब्द उन्हें भी कुछ अच्छा नहीं लगता। उनके अनुसार 'मास्साब' माने 'मारसाहब'।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यहां अध्यापकों को भी पूर्ण स्वतंत्रता है और इसी स्वतंत्रता ने पैदा किया है आत्मा-नुशासन। बच्चों को क्या पढ़ाया है, कैसे पढ़ाना है, हर बच्चे का मूल्यांकन, कोई बच्चा अगर लगातार पीछे रहता है तो उसके माता-पिता से बातचीत करके कारणों का पता करना...। यह सब शिक्षक अपनी ज़िम्मेदारी समझते हैं। स्कूल में कोई हैडमास्टर नहीं है। शिक्षकों को अपना मूल्यांकन भी खुद ही करना होता है। उनका सुबह का समय (8 बजे से 2 बजे तक) बच्चों के साथ बीतता है और 2 बजे से 4 बजे तक वे आपस में, अगले दिन क्या पढ़ाना है, इस बारे में चर्चा करते हैं और साथ ही उस दिन पढ़ाए गए विषयों से संबंधित बच्चों का मूल्यांकन भी करते हैं।

दो चार दिन रहने के बाद जब मैं वहां से चली तो कई सुखद स्मृतियां थीं, यहां रहना बिल्कुल एक नया-सा अनुभव था।

अनुपम गेरा - रसायन शास्त्र में अध्ययन, चंडीगढ़ में निवास।

खोद निकाला एक गांव

सी. एन. सुब्रह्मण्यम

इनामगांव न कभी किसी साम्राज्य का केंद्र रहा, न ही यहां कोई 'महापुरुष' पैदा हुए, न ही यह किसी महान ऐतिहासिक घटना का केंद्र रहा। फिर भी यहां 3600 साल पहले रहने वाले लोग कुछ खास ज़रूर थे। उन्होंने एक ऐसे क्षेत्र में 600 से अधिक वर्षों तक संपन्न जीवन बिताया जहां आज के लोग बगैर सरकारी अनुदान के गुज़ारा कर पाना मुश्किल पाते हैं। दक्षिणी महाराष्ट्र का यह भाग एक अत्यंत सूखाग्रस्त इलाका है। बताया जाता है कि यहां हर 50 साल में से 11 साल सूखाग्रस्त होते हैं और उनमें से भी 7 साल तो कठिनतम सूखे के। तो सवाल है कि 3600 साल पहले इस इलाके में लोगों ने ऐसा क्या नुस्खा निकाला था कि वे संपन्न जीवन बिता पा रहे थे।

जब कभी हम पुरातत्व या खुदाई की बात सोचते हैं तो हमारे मन में बड़े-बड़े शहरों, भव्य मंदिरों व प्रासादों की कल्पना उभरती है। सुंदर मूर्तियां, हीरे-सोने के जवाहरात, सिक्के..... न जाने क्या-क्या अजीबो-गरीब चीज़ों को देखने की आशा बंध जाती है। लेकिन आप यकीन कर पाएंगे कि कहीं खुदाई हो रही हो और खुदाई करने वाले लोग प्राचीन घरों की धूल में से चूहों की लेंड़ी की खोज करें और यह जानकर परेशान हों कि लेंड़ी की मात्रा किसी काल में कम हो रही है तो किसी में ज़्यादा। और-तो-और वे इस बात के पीछे भी पड़े हों कि ये लेंड़ियां चूहों की हैं कि मूसों की...! अगर कोई इस बात को लेकर बहुत चिंतित हो जाए कि फलां काल में कुत्तों की हड्डियां टूटी और जली हुई मिल रही हैं, तो शायद आप यही सोचेंगे कि साहब का दिमाग ज़रा 'सरक' गया है। ऐसे ही 'सरके' हुए लोगों की एक टोली, डेक्कन कॉलेज पुणे से निकल-कर महाराष्ट्र के एक गांव, इनामगांव पर लगातार कई साल धावा बोलती रही,

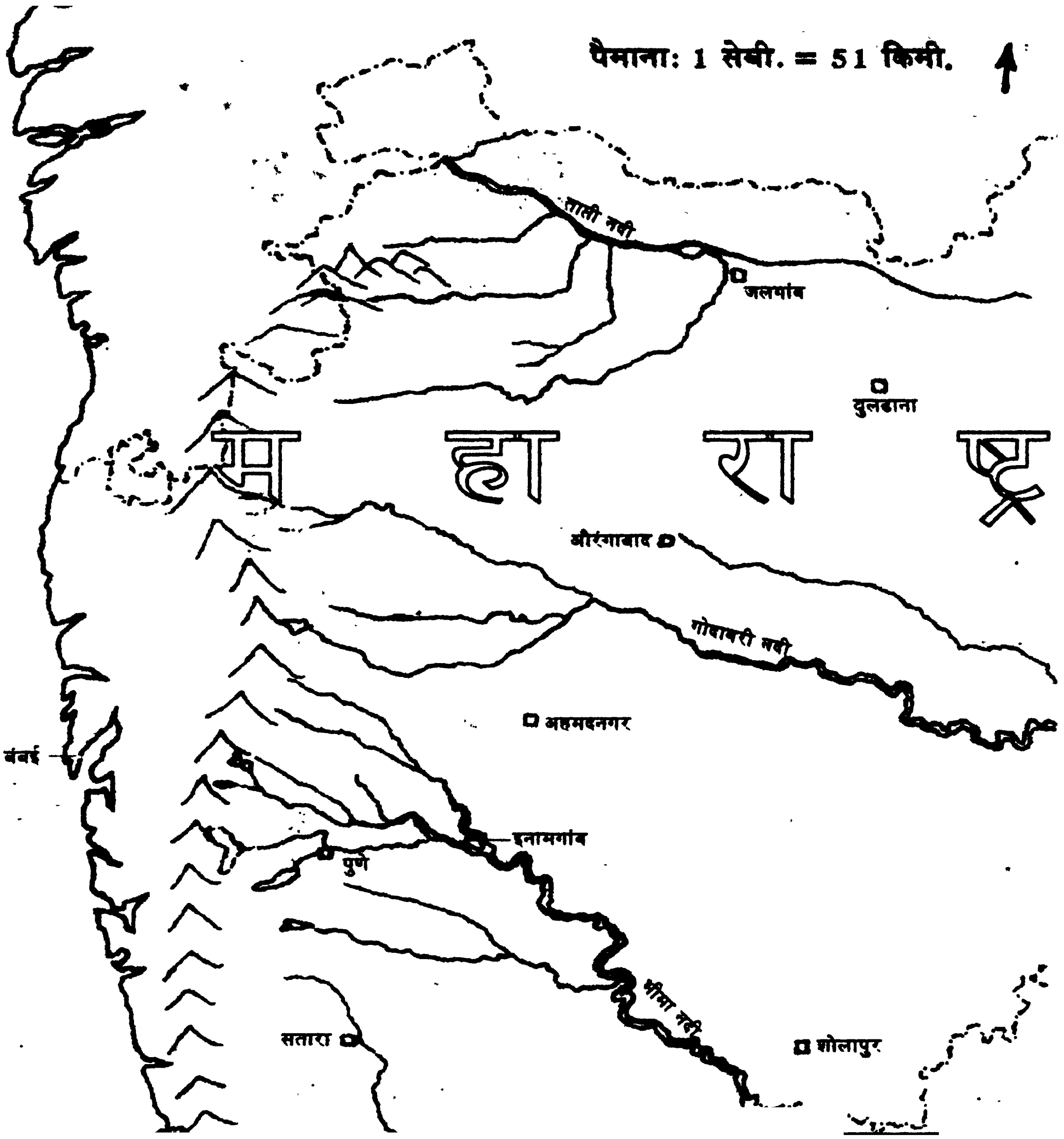

खुदाई कर-करके बारीक-से-बारीक चीज़ों को इकट्ठा करती रही और नोट करती रही कि कहां, क्या, किस हालात में मिला। इलाका बहुत बड़ा नहीं था – बस यही कोई पांच हेक्टेयर।

आखिर इन पांच हेक्टेयर में रहने वाले उन प्रागैतिहासिक लोगों की खासियत क्या थी कि कोई उन पर इतनी मेहनत करे? इनामगांव न कभी किसी साम्राज्य का केंद्र रहा, न ही यहां कोई 'महापुरुष' पैदा हुए, न ही यह किसी महान ऐतिहासिक घटना का केंद्र रहा। फिर भी यहां 3600 साल पहले रहने वाले लोग कुछ खास ज़रूर थे। उन्होंने एक ऐसे क्षेत्र में 600 से अधिक वर्षों तक संपन्न जीवन बिताया जहां आज के

लोग बगैर सरकारी अनुदान के गुज़ारा कर पाना मुश्किल पाते हैं। दक्षिणी महाराष्ट्र का यह भाग एक अत्यंत सूखाग्रस्त इलाका है। बताया जाता है कि यहां हर 50 साल में से 11 साल सूखाग्रस्त होते हैं और उनमें से भी 7 साल तो कठिनतम सूखे के। तो सवाल है कि 3600 साल पहले इस इलाके में लोगों ने ऐसा क्या नुस्खा निकाला था कि वे संपन्न जीवन बिता पा रहे थे। और वह भी ऐसी स्थिति में जब कि शायद ही वे हल-बैल का इस्तेमाल करते हों। ध्यान रहे कि उन दिनों लोहे का प्रचलन नहीं था।

लेंड़ियों और हड्डियों से इतिहास

चूहे की लेंड़ियों और कुत्तों की हड्डियों से इन बातों का क्या ताल्लुक? किसी घर में पाई जाने वाली चूहों की लेंड़ियों की मात्रा से उस घर में संचयित अनाज का अनुमान लगाया जा सकता है। ज़ाहिर है कि चूहे अनाज के गोदामों के इर्द-गिर्द रहना पसंद करते हैं। अगर खुदाई से यह पता चले कि किसी एक काल में लेंड़ियों की मात्रा बढ़ती जा रही है और किसी बाद के काल में उनकी संख्या अचानक कम हो जाती है तो यह अनुमान स्वाभाविक है कि पहले वाले कालखण्ड में खेती-बाड़ी उन्नत अवस्था में थी और दूसरे में किन्हीं कारणों से खेती में गिरावट आई होगी। चूहों की बहुलता खेती के लिए खतरनाक भी है – वे न केवल अनाज को खा जाते हैं, बल्कि खड़ी फसल को भी नष्ट कर देते हैं। और फिर उनकी वजह से प्लेग जैसी महामारी भी फैल सकती है। अतः चूहे की लेंड़ी काफी महत्वपूर्ण चीज़ हो जाती है।

इसी तरह कुत्तों की हड्डियों को कमतर आंकना सही नहीं होगा। यह बात किसी भी देश या संस्कृति के लिए आमतौर पर सही मानी जाती है कि अगर मनुष्य किसी जानवर को अपना मित्र मानता है और उसे अपने परिवार का सदस्य मानता है तो वह कुत्ता है। जब आपको इशारा मिले कि मनुष्य कुत्ते को खा रहा था तो आप निश्चय ही अनुमान लगा सकते हैं कि परिस्थितियां काफी कठिन रही होंगी। जानवरों की हड्डियां जब टूटी हुई और जलाई गई मिलती हैं तो यह समझा जाता है कि उन्हें मनुष्य ने खाने के लिए उपयोग किया है। इनामगांव भारत के प्रागैतिहासिक स्थलों में से एकमात्र है जहां इस तरह कुत्तों को खाने की प्रथा दिखती है। वह भी एक खास दौर में।

इनामगांव में खुदाई के वक्त ढूंढी जा रही चूहों की लेंड़ियां और कुत्तों की हड्डियां यह जानने के लिए महत्वपूर्ण हैं, कि वहां के लोग इस सूखाग्रस्त इलाके में कैसे गुज़ारा करते थे। लेकिन पूरा मामला काफी पेचीदा है। चलिए इसी विषय पर कुछ और जानकारी हासिल करें।

इनामगांव - एक सरसरी निगाह

मालवा से आए लोग: हम यह तो पहले ही बता चुके हैं कि इनामगांव कहां पर बसा है। अब देखें यहां लोग कब से बसने लगे। इनामगांव में बसाहट का इतिहास शुरू होता है, आज से 3600 साल पहले। यह वो समय था जब सिंधु

घाटी के शहर उजड़ने लगे थे और दूर उत्तर-पश्चिम में संस्कृत बोलने वाले कबीले आकर बसने लगे थे। उन्हीं दिनों मालवा में एक कृषक-समाज पनप रहा था। ऐसा लगता है कि 3600 साल (ई.पू. 1600) पहले के क़रीब इन लोगों में से कुछ महेश्वर से दक्षिण की ओर फैलने लगे और तापी व गोदावरी नदियों की घाटियों से होते हुए महाराष्ट्र के दक्षिण तक आ पहुंचे। रास्ते में उनमें से कई लोग जगह-जगह बसते गए। ये लोग इतने दक्षिण में, वो भी एक सूखे इलाके में आकर क्यों बसे इसके बारे में पक्के तौर पर कुछ कह पाना मुश्किल है। जो भी हो, इनामगांव में मालवा के कृषक समाज से संपर्क रखने वाले लोग ई.पू. 1600 तक बस गए थे। इन लोगों की खास पहचान यही थी कि वे वैसे ही बर्तन-भांडे उपयोग करते थे जैसे कि मालवा के लोग उस समय करते थे। करीब 200 वर्ष तक उनकी यह पहचान बनी रही और उसके बाद पश्चिमी महाराष्ट्र के कृषक समाजों की अपनी एक संस्कृति विकसित होने लगी। इसे हम आज **जोर्वे संस्कृति*** कहते हैं।

ई.पू. 1600 से 1400 तक का काल (मालवा-काल) हालांकि बहुत संपन्न समय नहीं था, फिर भी इस काल में लोगों का जीवन विकासोन्मुख दिखता है। लोग शिकार, पशुपालन और खेती तीनों से अपना गुज़ारा करते थे। वे जौ, दाल, मटर, मोठ, आदि उगाते थे और चौकोर घरों में रहते थे। उस समय कई घर ज़मीन को खोदकर बनाए थे।

ई.पू. 1400 से 1000 तक (ज काल 1) : यह इनामगांव का स[...] संपन्न काल था। इस दौर में यहां लग[...] एक हज़ार लोग रहते थे, उनके घरों [...] आकार चौकोर था और वे काफी [...] भी थे। इन लोगों का दूर दराज़ के इला[...] से लेन-देन का संबंध था – गुजरा[...] कर्णाटका, कोंकण आदि प्रदेशों की चं[...] इनामगांव में उपयोग होने लगी थीं। खु[...] से पता चलता है कि इन्होंने अप[...] संपन्नता को बचाने के लिए बस्ती [...] चारों ओर मिट्टी की दीवार से किलेबं[...] भी की थी।

ई.पू. 1000 से 700 तक (जो काल 2) : जैसा कि बहुत-सी सुख[...] कहानियों का एक दुखद अंत होता [...] इनामगांव को भी ये दिन देखने पड़े। इ[...] काल में आबादी घटी, हर क्षेत्र में जीव[...] -स्तर गिरा, और समय के चलते पू[...] बस्ती वीरान होकर उजड़ गई।

संपन्नता और ह्रास की इसी कहा[...] को ज़रा बारीकी से देखें।

जले दानों से पूछो

हमें यह कैसे पता चलता है [...] 3600 साल पहले लोग क्या-क्या उगा[...] थे? आख़िर अनाज या दाने तो इत[...] दिनों में ज़रूर सड़कर ख़त्म हो जा[...]

* यहां संस्कृति से मतलब उनके रहन-सहन, जीवन पद्धति से है। जो मालवा के लोगों से भिन्न होने लग[...] थी। सबसे पहले इस परिवर्तन का पता महाराष्ट्र में जोर्वे नाम की जगह से चला इसलिए इसे जोर्वे संस्कृ[...] कहते हैं।

ले दानों से इतिहासः कैसे मालूम पड़ा कि इनामगांव के लोग क्या-क्या उगाते थे? इसकी ानकारी मिली जले हुए दानों से। इस दौर के लोग अनाज पीसने के लिए सिल-बट्टे का इस्तेमाल रते थे। अगर दानों में नमी हो तो उन्हें पीसना बहुत मुश्किल होता है। इसलिए दानों को भूंज लेया जाता है। भूंजने की इस प्रक्रिया में काफी सारे दाने जल भी जाते हैं। ऐसे ही जले हुए दानों ो इनामगांव के लोग बाहर कूड़े में फेंक देते थे। जले हुए यह दाने सैंकड़ों साल तक सुरक्षित रह कते हैं। इस गांव के कूड़े से जो अनाज मिले वे थे – गेहूं, जौ, अरहर, मटर, मोठ, वाल, ज्वार, ागी, उड़द, मूंग, चना, खेसरी दाल और चावल।

ापको यह पढ़कर हैरानी होगी कि इस ांव में अनाज के दाने मिले – लेकिन ले हुए। जले दाने खराब नहीं होते हैं, ौर सैकड़ों साल तो क्या हज़ारों साल ुरक्षित रहते हैं। क्या वे सब अनाज़ के ाने जलाकर सुरक्षित इसलिए रखे गए ा ताकि आज के इतिहासकार पता कर कें कि उस समय लोग क्या-क्या ाते थे?!

वास्तव में होता यह है कि जो लोग नाज़ को सिल-बट्टे पर पीसकर खाते , वे पहले अनाज को अच्छे से सेंक लेते ताकि दानों में नमी न रहे। नमी युक्त ाने बमुश्किल पिसते हैं, यह तो हम ानते हैं। हमारे सौभाग्य से इनामगांव में जो भी भूंजने का काम करते थे वे शायद काफी व्यस्त लोग थे जिन्हें एक साथ कई काम करने पड़ते होंगे। नतीजतन काफी सारे दाने जलकर फिंक जाते थे। जैसी कि हिंदुस्तानियों की परंपरा है, ऐसे कूड़ों को लोग अपने घरों के बाहर फेंक देते थे। ये दाने वहीं पड़े रहे और 'अहिल्या' की तरह डेक्कन कॉलेज के पुरातत्व-शास्त्रियों का इंतज़ार करते रहे। (हमें बताया जाता है कि इनामगांव में विधिवत खुदाई से 163 घरों के अवशेष मिले हैं, जिनमें से 43 घरों या उनके सामने से जले दाने मिले हैं।)

इनामगांव में किसी समय लापरवाही या फिर कोई और कारण से दो-तीन

घर जलकर राख हो गए। उन घरों से भी हमें जले दाने मिले हैं। (इनामगांव में दो जले घर मिले हैं जिनमें से एक से जले दाने मिले हैं।)

कौन-कौन से दाने थे यह? गेहूं, जौ, अरहर, मटर, मोठ, वाल (एक तरह की सेम), ज्वार, रागी, उड़द, मूंग, चना, खेसरी दाल और चावल के कुल तीन दाने। यानी कि पांच तरह के अनाज, और आठ तरह की दालें। ये सारे अलग-अलग समय पर अलग-अलग तरह की ज़मीन पर उगते हैं। हरेक की पानी की ज़रूरत अलग है। इससे यह मतलब निकलता है कि इनामगांव के लोग किसी एक या दो तरह की फसलों पर निर्भर न रहकर कई तरह की फसलों का उपयोग करते थे। सूखे या बाढ़ की स्थिति में एक फसल नष्ट भी हो जाए तो दूसरी फसल पकने की उम्मीद तो रहती। आप जानते हैं कि इनामगांव जैसे वृष्टि छाया क्षेत्र में बारिश की संभावना बहुत कम है — यह नहीं कहा जा सकता कि किस मौसम में पानी कम गिरेगा कि सामान्य या ज़्यादा। उन्हें हर परिस्थिति के लिए तैयार रहना होता था। कई तरह की फसल बोकर प्राचीन इनामगांव के लोग अपने जोखिम कम कर रहे थे। ताकि बाढ़ हो या सूखा कोई फसल तो बच ही जाए। अर्थात सूखाग्रस्त इलाके में भोजन की समस्या से निपटने का यह एक महत्वपूर्ण तरीका हुआ।

फिर भी यह सवाल ज़रूर उठता है कि इन सब में से कौन-सी फसल अधिक महत्वपूर्ण थी और कौन-सी कम। यह पता करना खासा मुश्किल काम है। यह कहा जा सकता है कि जो दाने अधिक मात्रा में मिले वे अधिक उगाए जाते होंगे। अगर ऐसा है तो विभिन्न अनाज या दालों के दानों की संख्या की तुलना से यह पता लगाया जा सकता है। याद कीजिए कि ये दाने हमें मिले कैसे — भूंजने में जो जल गए वे ही तो बचे हैं। ज़्यादातर अनाज ही भूंजे जाते हैं, दालों को कम ही भूंजते हैं। तो गेहूं या जौ के जले हुए दानों के मिलने की संभावना अधिक है, बनिस्बत दालों के। यानी अलग-अलग फसलों के दाने उसी अनुपात में नहीं बचते जिस अनुपात में वे उगाए जाते होंगे।

उदाहरण के लिए गेहूं और जौ की बात लें। यह देखा गया कि बस्ती से मिले जले दानों में से जौ के दानों का कुल वज़न गेहूं के दानों के कुल वज़न से 12 गुना ज़्यादा था। तो आप अनुमान लगा बैठेंगे कि जौ गेहूं से कहीं अधिक उगाया जाता होगा। वहीं पास में खुदाई के दौरान लोगों की टट्टियों के जो अवशेष मिले उनमें गेहूं का वज़न जौ के वज़न से दुगना है! तो सवाल उठता है कि बस्ती से मिले दानों के अवशेष और लोगों की टट्टियों से मिले अवशेष, दोनों में इतनी विसंगति कैसे? इसका एक कारण यह हो सकता है कि मनुष्य खुद गेहूं खा रहे थे और जानवरों को जौ खिला रहे थे। यानी मामला काफी उलझा हुआ है।

अगर आप फसलों की सूची को ध्यान से देखें तो पाएंगे कि ज़्यादातर रबी की फसलें हैं। एक सूखाग्रस्त इलाके में फसल

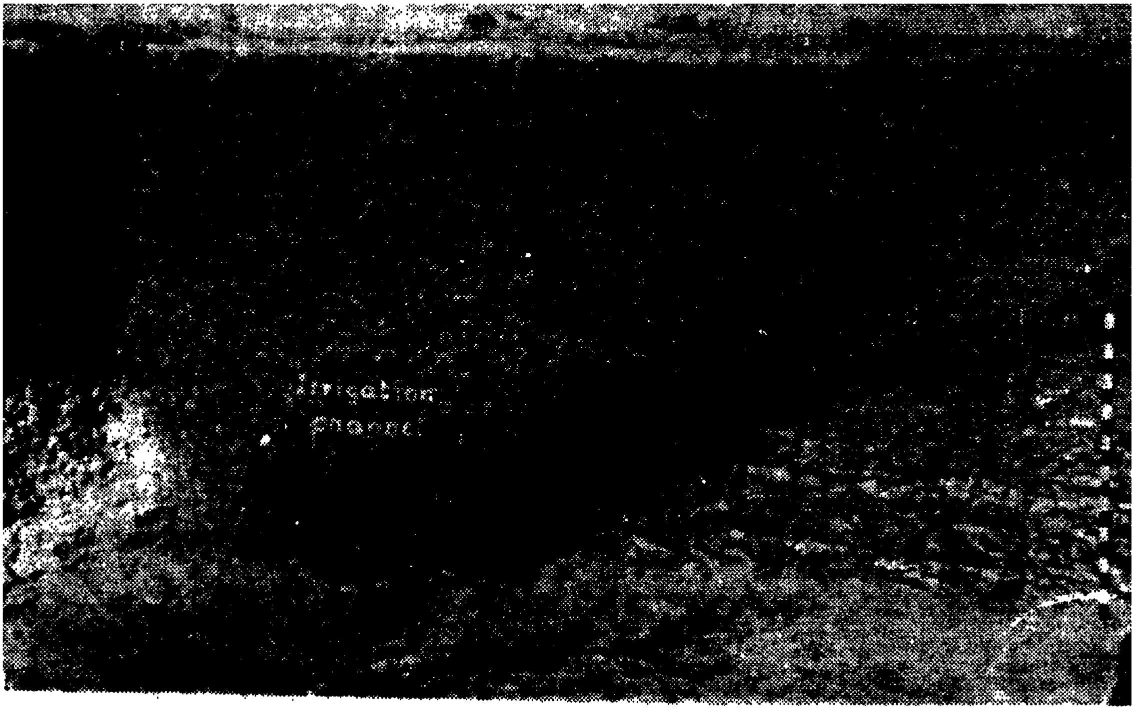

इनामगांव के लोग रबी में गेहूं की फसल कैसे ले पाए: पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा खोज निकाली गई नहर का एक हिस्सा। यह मुख्य नहर थी जो उस समय गांव के पास से गुज़र रही एक नदी से निकाली गई थी और करीब साढ़े तीन मीटर गहरी थी। इससे एक छोटी नहर भी निकलती थी जो पानी खेतों तक ले जाती थी।
बाद के काल में यह धीरे-धीरे पुर गई। यह चित्र इसी नहर की एक खड़ी काट है। इसमें अर्धचंद्राकार नहर साफ दिख रही है। यह नहर इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत में नहर सिंचाई का यह पहला ठोस प्रमाण है।

खरीफ में न लेकर रबी में लेना आश्चर्य में डालता है। इसके कई कारण हो सकते हैं – यहां की मिट्टी काली चिकनी है जो बारिश में काफी पानी सोख लेती है और भारी हो जाती है। इस कारण इस पर रबी में ही खेती संभव है। काली मिट्टी में मानसून की बारिश की नमी सर्दियों तक बनी रहती है।

गेहूं को इस इलाके में बगैर सिंचाई के नहीं उगाया जा सकता। इनामगांव की खुदाई में पाया गया कि शुरुआती 'मालवा-काल' में वहां, गेहूं नहीं उगाया जाता था, और अंत के 'पतन' वाले काल में भी नहीं। केवल समृद्ध 'जोर्वे-काल' में गेहूं उगाया गया। और फिर डेक्कन कॉलेज के लोग खुदाई करते-करते एक मज़ेदार चीज़ खोज बैठे। पास की एक नदी से एक नहर निकाली गई थी जिसके एक तरफ़ ऊंचा किनारा भी बनाया गया था। इस नहर से एक और छोटी नहर निकलती थी जो पानी को खेतों तक ले जा सकती थी। मुख्य नहर साढ़े तीन मीटर गहरी थी और नीचे चट्टान तक खोदी गई थी। चट्टान तक इसलिए ताकि रिसन से पानी व्यर्थ न

जाए। इस नहर की चौड़ाई 4 मीटर थी, यानी इसमें काफी मात्रा में पानी लाया जा सकता था और ज़रूरत पड़ने पर पानी को तालाब की तरह रोका भी जा सकता था। शायद इसी कारण उसके एक तरफ सेतु भी बनाया गया था।

यह खोज काफी महत्व की है क्योंकि इससे पहले भारत में नहर-सिंचाई के ठोस प्रमाण नहीं मिलते। इनामगांव के लोग वर्षा ऋतु में नाले में व्यर्थ बह रहे पानी को नहरों द्वारा खेतों में पहुंचाते थे और अतिरिक्त पानी को संचित कर शायद ठंड के मौसम में गेहूं की फसल को पानी देते थे। इस तरह उन्होंने अपने इलाके की मौसमी समस्या से निपटने का एक महत्वपूर्ण तरीका खोज लिया था।

जंगल और शिकार

इनामगांव से हड्डियों के 2400 टुकड़े मिले। इनमें हाथी, गेंड़ा, हिरण, बारासिंगा, नीलगाय, जंगली भैंसा, चीतल से लेकर सुअर आदि जानवरों तक की हड्डियां हैं। इनके अलावा काफी मात्रा में मछलियों की हड्डियां भी मिली हैं। इससे यह पता चलता है कि विकसित खेती के बावजूद वे लोग मांसाहारी भोजन पर निर्भर थे।

जंगलों से शिकार करने के अलावा लोग कई तरह के फल और साग बटोर लाते थे। ऐसे सबूत मिलते हैं कि वे बेर के खास शौकीन थे। उनके घरों से बेर के खूब सारे बीज मिले हैं। ऐसे सबूत भी मिले हैं कि बेर के अलावा जामुन और खजूर भी बटोरा जाता था।

कोठियां

शिकार और पशुपालन की तुलना में खेती में उत्पादन एक साथ मिलता है जिसे सालभर के लिए भरकर रखना पड़ता है। तो ज़रूरी है कि लोग घरों में सालभर अनाज रखने की कोई व्यवस्था

अनाज भरकर रखने के लिए बड़े घड़े

करें। इनामगांव में लोगों ने इस काम के लिए घरों में कोठियां बना रखी थीं। लेकिन इनमें भी एक दिलचस्प बात देखने को मिली। एक आम भारतीय आमतौर पर रोज़ाना लगभग 400 ग्राम अनाज खाता है, यानी उसे सालभर में 145 किलो अनाज की ज़रूरत पड़ती है। इस तरह चार सदस्यों वाले एक परिवार के लिए सालभर में लगभग 650 किलो अनाज की ज़रूरत होगी। इनामगांव की कोठियों में 700 किलो तक अनाज रखा जा सकता था। यानी कि घरेलू उपयोग के लिए केवल सालभर के लिए अनाज रखा जाता था। लेकिन अकाल के समय के लिए भी क्या वे कोई बंदोबस्त करते थे?

इनामगांव के सबसे बड़े घर के बगल में एक इमारत मिली जिसमें किसी के रहने के लक्षण तो नहीं दिखे लेकिन खूब सारी कोठियों के अवशेष और उन्हें रखने के लिए बने चबूतरे मिले। शायद यह गांव के मुखिया का घर और उसका अनाज भंडार रहा होगा। इसमें लोग समय-समय पर कुछ अनाज देते रहे होंगे जिसे बाद में अकाल के समय उपयोग में लाया जा सकता था या ज़रूरतमंद लोगों को दिया जा सकता था।

कैसा समाज?

हमने ऊपर एक मुखिया का ज़िक्र किया है। उस गांव में कोई मुखिया था और वह घर उस मुखिया का था, यह कैसे कहा जा सकता है? और मुखिया हो भी तो कैसा मुखिया? सबसे पहली बात तो यह है कि वह घर सामान्य घरों

मुखिया के घर से मिला बच्चे का कंकाल

से काफी बड़ा था। उसमें चार-पांच लोगों को दफनाया गया था। इनामगांव में मृतकों को घर के अंदर ही दफनाने की प्रथा थी। आमतौर पर लाशों के पैर काटकर उन्हें दफनाते थे जबकि इस घर में प्राप्त कम-से-कम पांच लाशों के पैर नहीं काटे गए थे। इसका मतलब यह है कि इस परिवार के लोग कुछ फर्क थे, कुछ खास। उल्लेखनीय है कि यहां मिले एक बच्चे के कंकाल पर कीमती मणि और तांबे के हार हैं। आम तौर पर जब बच्चों के गले में ऐसी चीज़ें मिलती हैं तो उनसे यह अनुमान लगाया जाता है कि ये हार

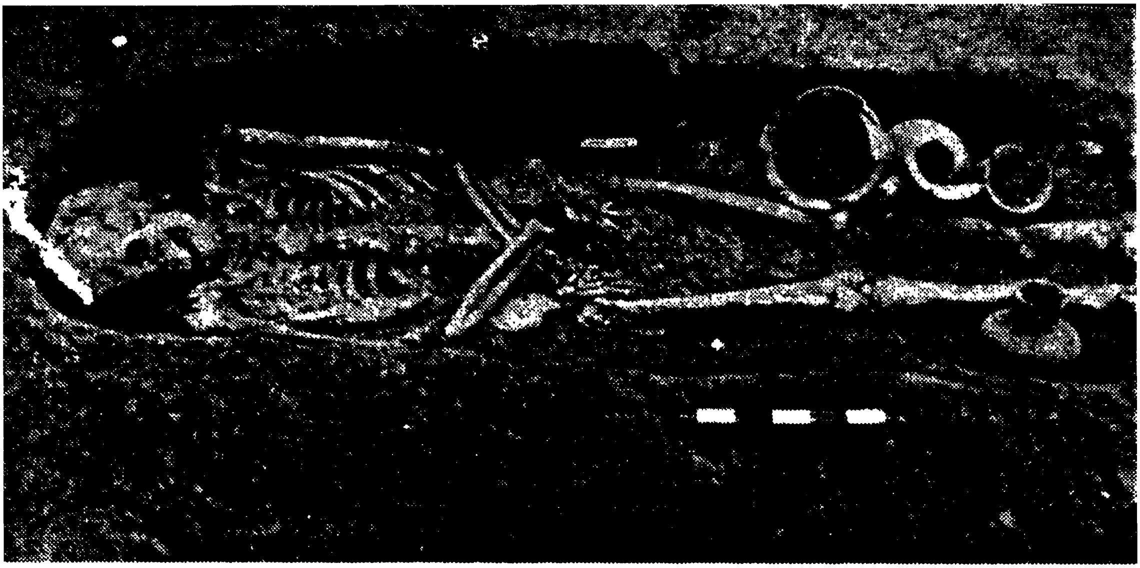

एक साधारण आदमी की कब्र: इनामगांव में मृतकों को घर के भीतर ही दफनाया जाता था। दफनाने से पहले उनके पैर काट दिए जाते थे। ऐसी बहुत-सी कब्रें खुदाई के दौरान मिलीं। कैसे मालूम पड़ा कि ये कब्र साधारण आदमी की है? पूरी बस्ती में एक बड़े घर में दफन सिर्फ पांच कब्रें ऐसी मिलीं जिनके पैरे नहीं कटे थे, इनमें से एक बच्चे के कंकाल पर कीमती मणि और तांबे के हार थे। यानी कि ये लोग कुछ खास थे, जबकि बाकी सारी कब्रों में दफन लोगों के पैर कटे थे।

उनकी अपनी 'कमाई' नहीं है बल्कि एक वंशानुगत ओहदे की निशानी है।

अगर हम यह भी गौर करें कि इनामगांव को घेरकर एक दीवार बनी थी और यहां नहरें, बंधान और गोदाम थे और यहां के लोगों का दूर-दूर के लोगों से लेन-देन का संबंध था तो हम मानकर चल सकते हैं कि इन सबके संयोजन में किसी-न-किसी प्रकार के मुखिया का हाथ ज़रूर रहा होगा। लेकिन एक महत्वपूर्ण बात है। 'मुखिया' के घर से अन्य घरों की तुलना में बहुत धन दौलत की निशानियां नहीं मिली हैं। यानी यह कहा जा सकता है कि मुखिया और सामान्य लोगों के बीच आर्थिक खाई बहुत चौड़ी नहीं थी।

लेकिन वो गोदाम जो मुखिया के घर से लगा हुआ था...? इस प्रकार के दूसरे छोटे कबीलों के अध्ययन से पता चलता है कि ये मुखिया कबीले के लिए अनाज संचयन करते थे, यहां तक कि दूसरों से अपने खेतों में बेगार करवाते थे, लेकिन उनका फर्ज़ बनता था कि समय-समय पर सब लोगों को खिलाएं-पिलाएं, ज़रूरतमंदों को सहारा दें और अकाल के समय में अपने गोदाम से सबको खिलाएं। अगर वह ऐसा नहीं करे तो लोग उसका कहा मानने से इंकार कर देते तथा किसी और को अपना मुखिया बना लेते थे।

तो मुखिया बने रहने के लिए उसे सबके प्रति अपनी उदारता दिखाते रहना पड़ता था। शायद इसी कारण अपने इनामगांव का मुखिया भी कभी 'धन'

क्या खाते थे?

इनामगांव के लोग क्या खाते थे यानी उनका भोजन संतुलन कैसा था, यह पता करने के लिए उनकी हड्डियों की जांच की गई। हड्डियों में मिलने वाली मैंगनीज़, ज़िंक, तांबा, स्ट्रोंशियम, मैग्नीशियम आदि की मात्रा से वैज्ञानिक भोजन संतुलन के बारे में तय कर पाते हैं।

यह पाया गया कि समृद्ध जोर्वे काल की तुलना में बाद के काल में भोजन में ज़िंक और तांबे की मात्रा अधिक थी – इसका यह मतलब निकाला जाता है कि बाद के काल के लोग मांसाहार पर अधिक निर्भर थे। इसी तरह समृद्ध जोर्वे काल के लोगों की हड्डियों में मैंगनीज़ की मात्रा अधिक थी – इसका मतलब निकाला गया कि वे लोग जंगली पौधों और मछलियों को ज़्यादा खाते थे।

इसी तरह समृद्ध तथा साधारण लोगों और कारीगरों आदि के घरों से इकट्ठी की गई हड्डियों की तुलनात्मक जांच से पता चला कि समृद्ध लोगों का भोजन अधिक पौष्टिक था। हड्डियों की जांच से एक और जानकारी मिली कि समृद्ध जोर्वे काल में मां अपने नवजात शिशु को लगभग एक साल तक और बाद के काल में दो-तीन साल तक अपना दूध पिलातीं थीं।

इकट्ठा नहीं कर पाया और उसके व दूसरों के बीच का फर्क उन्नीस-बीस ही था।

लेकिन इस बात का ताल्लुक सूखाग्रस्त इलाके में सफलता से जीने के साथ भी है। चूंकि यहां के लोगों के बीच साधनों का वितरण अधिक असमान नहीं था, और सबके पास अपनी न्यूनतम ज़रूरतों को पूरा करने के लिए साधन उपलब्ध थे, और उन्हें किसी शासक को कर नहीं देना पड़ता था, और वे अपने अतिरिक्त उत्पादन को बुरे दिनों के लिए संचयित कर सकते थे, और ज़रूरत पड़ने पर एक दूसरे की मदद कर सकते थे – इसीलिए शायद वे इन कठिन इलाकों में भी 600 वर्ष तक सफलता से रह पाए।

उजाड़ की ओर....

इनामगांव में खुदाई करने वाले बताते हैं कि ई.पू. 1000 से 700 के बीच जीवन स्तर गिरता गया और अंत में यह गांव वीरान हो गया। अब यह सवाल तो उठेगा ही कि ऐसा क्यों हुआ।

इस दौर में बड़े आयताकार घरों की जगह छोटे गोल घर बनने लगे थे, घरों के अवशेषों में से खेती से प्राप्त होने वाले बीजों की मात्रा कम हो जाती है और बेर जैसे जंगली फलों के बीज और जानवरों ही हड्डियों की मात्रा बढ़ जाती है। इन सारी हड्डियों में से हिरणों की हड्डियों की मात्रा 5% से बढ़कर 14% हो जाती है। कई तरह के जंगली पौधों

के अवशेष मिलने लगते हैं जिससे लगता है कि लोग अब इनपर काफी निर्भर होने लगे थे। सिलबट्टों की मात्रा में भी भारी कमी आ जाती है। गेहूं उगाना बंद हो जाता है और नहरें भी मिट्टी से पुर जाती हैं। बर्तन-भांडों की बनावट में भी वो पुराना हुनर नहीं दिखता। पहले की तरह उनपर अब चित्रण भी नहीं दिखता है।

जानवरों की हड्डियों में से भेड़ व बकरियों की हड्डियों का अनुपात 25% से बढ़कर 72% हो जाता है। गाय/बैल की हड्डियों की मात्रा 53% से घटकर 14% रह जाती है। आजकल के पशुपालकों के संदर्भ में देखा गया है कि के समय में लोग गाय/बैल जैसे भारी जानवरों की बजाए भेड़-बकरी रखना ज़्यादा पसंद करते हैं। गाय बैल तो खेतिहर लोग ज़्यादा पसंद करते हैं।

कुल मिलाकर ऐसा लगता है कि लोग खेती-बाड़ी कम करके पशुपालन करने लगे और शिकार व जंगली फल बटोरने लगे। इस परिवर्तन के क्या कारण हो सकते हैं?

कई तरह की खोजों के बाद इतिहासकार, पुरातत्ववेत्ता और मौसम वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि ई.पू. 1000 से 500 तक अपेक्षाकृत सूखा मौसम बना रहा। इससे पहले ई.पू. 1700 से 1000 तक वर्षा अधिक रही। यह परिस्थिति लगभग पूरे प्रायद्वीप में बनी रही। इस सूखे वातावरण के कारण लोग खेती छोड़ने पर विवश हुए और कम वर्षा की स्थिति में पशुपालन और जंगल के सघन उपयोग की तरफ मुड़े। बताया जाता है कि ई.पू. 1000 के आसपास पूरे पश्चिम और मध्य भारत में बहुत-सी संपन्न बस्तियां उजड़ गईं। ये बस्तियां फिर से ई.पू. 500 तक आकर ही आबाद हो सकीं।

इनामगांव के लोगों ने तो इतनी जल्दी हार नहीं मानी। उन्होंने अपनी जीवन शैली बदली और कुछ 300 साल और गुज़ारा चलाते रहे। उसके बाद ही उजड़ा इनामगांव।

इनामगांव की खुदाई भारत की सबसे सघन और बहुआयामी खुदाईयों में से एक थी। इस काम की शुरुआत पुरातत्वशास्त्री डॉ. हसमुख धीरजलाल सांकलिया ने की थी। उनके नेतृत्व में प्रो. एम. के. धवलीकर, डॉ. ज़ेड. डी. अंसारी, डॉ. एस. एन. राजगुरु. डॉ. यू. डी. गोगरे तथा डॉ. एम. डी. काजले आदि लोगों ने इस काम को पूरा किया।

संदर्भ ग्रंथ: First Farmers Of Deccan - एम. के. धवलीकर
Excavation In Inamgaon vol I, II & III- एच. डी. सांकलिया और एम. के. धवलीकर

अपने आस-पास के पर्यावरण के बारे में

बच्चों की समझ

सर्वे, टेस्टिंग और उनका विश्लेषण छोटे पैमाने पर सीमित विद्यार्थियों के साथ भी किए जा सकते हैं। इससे कई ऐसे सवाल उठ सकते हैं, संकेत मिल सकते हैं जो उस क्षेत्र या विषय में ऐसे और काम (सर्वे या टेस्टिंग) की दिशा दिखाएं। ब्रिटेन की तीन प्राथमिक शालाओं के 75 विद्यार्थियों का अपने आसपास के पर्यावरण के अवलोकनों के बारे में किया गया सर्वेक्षण और उसका विश्लेषण एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

इस टेस्टिंग का मकसद था यह पता लगाना कि बच्चों में अपने आसपास की नैसर्गिक बारीकियों की कितनी समझ है। कितना कुछ वे ध्यान से देखते हैं, महसूस करते हैं और याद रख पाते हैं। दरअसल ब्रिटेन में लागू विज्ञान के देशव्यापी पाठ्यक्रम के मुताबिक कक्षा दूसरी और तीसरी के बच्चों को कुछ चुने हुए कुदरती आवासों की खोजबीन करनी होती है। उन्हें जानना-पहचानना होता है। दूसरी कक्षा का पाठ्यक्रम कहता है कि "..... कम-से-कम दो आवासों और उनमें बसे बाशिंदों (पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों) की जांच-पड़ताल करना....।" इसमें उनसे उम्मीद की जाती है कि वे उन तरीकों का भी पता लगाएं जिससे ये बाशिंदे अपने-अपने आवासों में रह पाते हैं। और यह भी मालूम करें कि इन सब पर इनके आसपास के हालातों के क्या असर पड़ते हैं। तीसरी कक्षा में इनके काम को स्थानीय कुदरती बाशिंदों से कुछ आगे बढ़ाकर कुछ और जीवों तक ले जाया जाता है। इसके अलावा इन बच्चों को कई फर्क-फर्क कुदरती आवासों से रूबरू [illegible] होती है।

यूं तो शहर के बच्चों के बारे में एक किंवदंती प्रचलित है कि उन्होंने शायद कोई जीती-जागती गाय भी न देखी हो। (हमारे देश के शहरी बच्चों के बारे में [illegible] कह

सकते हैं कि उन्होंने शायद ही कोई उल्लू या सियार देखा हो!) पर पर्यावरण अध्ययन के लिए इनके पाठ्यक्रम का तकाज़ा बहुत स्पष्ट है। वैसे भी कुछ बच्चे तो अपने आसपास रहने वाले अन्य जीवों को पहचानते ही होंगे। इन्हीं विचारों से लैस होकर हमने इस काम की शुरूआत की थी। बच्चों की मालूमात और अनुभव परखने के लिए।

जांच का तरीका

हमने यह जांच आठ साल की उम्र के 33 और दस साल की उम्र के 42 बच्चों के साथ की। हर बच्चे के साथ अलग-अलग बातचीत की गई। पहले समूह में (आठ साल उम्र वाले) 17 लड़के और 16 लड़कियां थीं। दूसरे समूह में (दस साल वाले) 23 लड़के और 19 लड़कियां थीं। बातचीत का खाका पहले से तय था। ये बच्चे शहरी इलाकों के तीन ऐसे स्कूलों में पढ़ते थे जहां सह-शिक्षा लागू थी और जो बेहतर माने जाते थे। और हां, इस जांच के लिए बच्चों का चुनाव किसी अनियत तरीके से या बगैर किसी आधार के किया गया हो, ऐसा भी नहीं था - यह कोई रैण्डम सैम्पल नहीं था। इन बच्चों को इनके शिक्षकों ने खास चुना था। उनकी रुचियों और काबिलियत को ध्यान में रखते हुए क्योंकि उन्हें इस जांच से अपने बच्चों की प्रतिभाओं का इज़हार करने का एक सुनहरा मौका-सा जो मिल रहा था।

सबसे पहले तो हमने इस प्रक्रिया में भागीदार बच्चों से गपशप करके एक दोस्ताना माहौल बनाने की कोशिश की। उन्हें यकीन दिलाया कि ये सवाल-जवाब किसी परीक्षा का हिस्सा नहीं हैं। और कि हर सवाल के कई संभावित जवाब हो सकते थे। किसी सवाल का कोई एक ही सटीक जवाब हो ऐसा नहीं है। और फिर शुरू हुआ सवाल-जवाब का सिलसिला।

बच्चों से कहा गया कि वे ऐसे जीवधारियों की फेहरिस्त (सूची) बनाएं जिन्हें उन्होंने या तो किसी पोखर, नाले या सोते के पास देखा हो या ऐसी जगहों पर देखने की उम्मीद करते हों। बातचीत के दौरान कुछ अन्य सवाल भी पूछे जाते थे। खासकर यह आंकने के लिए कि ऐसी जगह पर रहने के लिए उनमें जो अनुकूलन हुए हों, या ऐसी जगहों के हालातों का जीवों पर जो कुछ असर हो, उसे क्या कभी बच्चों ने महसूस किया है?

अगला सवाल स्कूल के पास के जंगल में पाए जाने वाले जीवधारियों के बारे में था। यहां भी फेहरिस्त ही बनानी थी। कुछ सुझाव देते रहने पर बच्चों ने स्तनधारी पशुओं, पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों और पेड़-पौधों के अलग-अलग नाम भी गिनाए। इस तरह से हमने जंगली पौधों और पशुओं से उनकी वाकफियत को टटोला।
बातचीत खत्म की गई गिलहरियों पर, उनके खान-पान और आदतों की चर्चा के साथ।

चर्चा और नतीजे

1. ताज़े पानी के स्त्रोतों में आवास

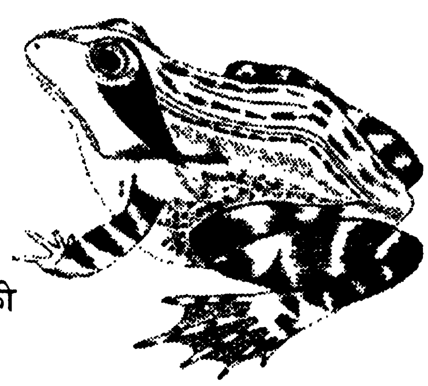

पोखर में रहने वाले जानवरों में से बच्चों ने सबसे ज़्यादा याद किया मेंढक को। दस साल की उम्र के 42 बच्चों में से सिर्फ चार बच्चे मेंढक को भूल गए लेकिन उन्हें भी टेडपोल याद रहा। इसी तरह तुलना करें तो दस साल की उम्र वाले ज़्यादातर बच्चों ने मछली को गिनाया था। पर इनमें से भी सिर्फ आठ ऐसे निकले जिन्हें मछली की किसी प्रजाति का नाम ध्यान रहा हो।

इसी तरह पानी में रहने वाले कीड़े-मकोड़ों का ज़िक्र तो आठ साल की उम्र वाले कई बच्चों ने किया पर मिसाल बहुत ही सीमित थे। इनमें पानी का गुबरैला 'वाटर बीटल' सबसे लोकप्रिय था। दस साल की उम्र तक आते-आते बच्चों को कुछ बिना रीढ़ वाले जानवरों का भी इल्म हो जाता है और वे उन्हें याद रखते हैं।

आठ साल की उम्र के बच्चों में पानी में पाए जाने वाले पेड़-पौधों की जानकारी बहुत ही कम थी। कोई एक तिहाई बच्चे ही इनके उदाहरण दे सके थे। कई बच्चे तो अभी पक्के तौर पर यह भी नहीं तय कर पाए थे कि पेड़-पौधों को जीवितों में गिनना चाहिए या नहीं। ताज्जुब की बात यह है कि दस साल की उम्र वाले बच्चों ने पेड-पौधों का ज़िक्र और भी कम किया। वैसे उनकी फेहरिस्त में सरकंडों और शैवाल (काई) को भी जगह मिली थी।

फिर आई बात जीवों के अनुकूलन और हालातों के हिसाब से उनमें हुए परिवर्तनों, रूपांतरणों की। कुछ जीव पानी में क्यों रहते हैं और वहां ज़िंदा रह सकने के लिए, फलने-फूलने के लिए, उनमें किस तरह के बदलाव आए हैं – इसकी आठ साल के बच्चों में बहुत ही सीमित समझ थी। अधिकतर जवाब बहुत ही सरलीकृत थे। इनमें 'तालाब ही उनका घर है', 'वे पानी से बाहर रह नहीं सकते' और 'प्रकृति ने उन्हें [illegible] जगह दी है' जैसे बयान शामिल थे। इन बयानों में कहीं भी पानी और उनके बाशिंदों को ध्यान से देखने की कोशिश नज़र नहीं आती है।

चौदह- [illegible] साल के बच्चों ने हालातों के हिसाब से ढल जाने की बात छेड़ी र पर [illegible] उनकी भी सीमित ही थी। कुरेदकर पूछने पर वे 'जानवरों के लिए साफ पानी की ज़रूरत' और 'इंसान द्वारा दूषित पानी से इनके दूर रहने' जैसी बातों पर ज़ोर देते थे।

2. जंगली आवास

जब बच्चों से यह पूछा गया कि जंगल में वे किन जीवों को देख पाने की उम्मीद करते हैं तो आठ साल और दस साल दोनों समूहों ने ज़्यादातर स्तनधारियों का ज़िक्र किया। लोमड़ी और गिलहरी दोनों ही समूहों में सबसे ज़्यादा लोकप्रिय थे। इसके बाद खरगोश और बिज्जू की बारी आती थी। सिर्फ दस साल वाले बच्चों ने हिरण और चूहों को याद रखा।

पक्षियों का ज़िक्र भी बच्चों ने बिना किसी सुझाव के अनायास ही किया। सबसे लोकप्रिय उदाहरण उल्लू था। इसके बाद थे मैना, कठफोड़वा, गौरैया और बुलबुल।

कीड़ों के बारे में तो बच्चों ने सीधे पूछे जाने पर ही कोई बात कही। तिस पर भी आठ साल के सिर्फ 13 बच्चों ने ही कीड़ों के नाम बताए। मज़ेदार बात यह थी कि इनमें सबसे लोकप्रिय थी मकड़ी। जो कीड़ा है ही नहीं! दसवें साल तक आते-आते ये बच्चे इसी श्रेणी में कुछ और ऐसे बिना रीढ़ वाले जानवरों को गिना देते थे जो कीड़े नहीं थे। पर इन को भी इन जीवों के नामों के अलावा कोई ज़्यादा पहचान नहीं थी इनकी।

बहुत ही कम बच्चों ने बगैर सुझाव के पेड़-पौधों का ज़िक्र किया। सुझाने पर भी आठ साल के बच्चे तब तक बार-बार 'फूल', 'पत्तियां' और पेड़ कहते रहे जब तक कि उन्हें साफ-साफ मिसाल गिनाने को नहीं कहा जाता। दस साल वाले समूह की स्थिति कुछ बेहतर थी पर यहां भी पेड़ों के नाम तो चंद ही सामने आए। बच्चों ने सबसे ज़्यादा 'ओक' का नाम लिया। आठ साल वाले तीन बच्चों का यह ख्याल था कि ओक और एकार्न (ओक के फल) के पेड़ अलग-अलग होते हैं। दोनों ही समूह के बच्चों ने पेड़ों को पेड़ के नाम से कम, उनके फलों के नाम से ही ज़्यादा पहचाना। (हमारे यहां तो यूं भी पेड़ों को फलों के नाम से ही जाना जाता है जैसे आम, पपीता, जामुन आदि। पर अंग्रेज़ी में अधिकतर पेड़ों के नाम और उनके फलों के नाम जुदा-जुदा होते हैं।)

झाड़ियों और छोटे पौधों का ज़िक्र तो बगैर सुझाए न के बराबर होता था। जब

सीधे सुझाव देने के बाद कुछ नाम उभरे तो वे भी जंगली न होकर मैदानी क्षेत्र के पेड़ थे।

अगर तुम जंगल में जाओ तो तुम्हें वहां कौन-से जानवर मिलेंगे? (रीढ़ वाले जानवर)

जानवर	8 साल के बच्चे (कुल 33 बच्चे)	10 साल के बच्चे (कुल 42 बच्चे)
बिना किसी सुझाव के स्तनधारियों का ज़िक्र	32	41
लोमड़ी	28	34
गिलहरी	22	27
बिज्जू	11	19
खरगोश	17	18
सेही	4	7
हिरण	0	9
चूहा	0	5
अन्य स्तनधारी	6	6
बिना किसी सुझाव के पक्षियों का ज़िक्र	25	36
उल्लू	12	29
मैना	9	25
कठफोड़वा	10	13
गौरैया	9	14
बुलबुल	4	10
ब्लैकबर्ड (कोयल की जाति की एक चिड़िया)	2	7
फुदकी	5	5
कबूतर	3	4
दूसरी चिड़ियां	13	36
सांप	0	6
छिपकली	0	1
मेंढक	0	1

3. गिलहरी का खान-पान और आदतें

आठ साल वाले सभी बच्चों ने कहा कि गिलहरियां मूंगफली और बादाम खाती हैं और लोमड़ी उनका शिकार करती है। कुछ बड़े बच्चों ने शिकारी पक्षियों जैसे उल्लू

आदि का ज़िक्र किया। अक्सर गिलहरियों के खान-पान की ज़रूरतों के हिसाब से हुए बदलावों में दांत और पंजे गिनाए जाते। इनके छुपे रहने और जल्दी भाग जाने की आदत को बच्चों ने शिकारी जानवरों से बचने के तरीकों के रूप में पहचाना।

इस जांच-पड़ताल से कुछ तो ऐसी ही प्रवृतियां पहचानी जा सकीं जिनकी हमें अपेक्षा थी। जैसे जानवरों का ज़िक्र करो तो जो नाम सबसे पहले बच्चों के ज़हन में आते हैं वे स्तनधारियों के ही होते हैं। इनके बाद बारी आती है रीढ़ वाले जानवरों की और फिर बिना रीढ़ वालों की। इसी तरह पेड़-पौधों की बनिस्बत जानवरों को ही ज़्यादा आसानी से जीवितों की श्रेणी में याद रखा जाता है।

कुछ परिणामों की तो हमने कल्पना भी नहीं की थी और इन्होंने हमें काफी चौंका दिया। मसलन बच्चों में बड़े पेड़ों, छोटे पौधों और कीटों, खासकर तितलियों के बारे में जानकारी की कमी। छात्रों को सीधे सुझाव देने पर भी हमें ऐसे कोई संकेत नहीं मिले कि उनके पास इनके बारे में कोई जानकारी है। दूसरी बात जो अचंभित करती है वह यह कि आठ साल की उम्र और दस साल की उम्र के बीच बच्चों में जानकारी और समझ का विकास भी बहुत ही सीमित होता है।

परिणाम और उनसे क्या मिला

हमारे परिणामों ने हमें यह सोचने पर मजबूर किया कि तीसरी, चौथी कक्षा में और उससे पहले भी प्राथमिक शाला की पढ़ाई के दौरान अपने पर्यावरण, पौधों और पशुओं के बारे में जानकारी और समझ बढ़ाने पर दिए जाने वाले ज़ोर का क्या अर्थ है? परिणाम यह भी बताते हैं कि उच्चतर शाला के छात्रों की अपने क्षेत्र में मौजूद पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों से लेकर बहुत आम पौधों और जानवरों से भी बेइंतहा सीमित वाकफियत है। अगर [illegible] तरह के ही परिणाम और भी ऐसी ही जांच-पड़ताल से सामने आते हैं या [illegible] इनकी तुलना [illegible]ण क्षेत्र में रहने वाले बच्चों से कर के देखा जाए तो शायद हमें तत्काल का[illegible] की ज़रूरत समझ में आए। कुछ ऐसी कार्यवाही जिससे भविष्य की पीढ़ियों में अपनी कुदरती धरोहर की जानकारी और उसके प्रति रूझान की क्षति को दूर या कम किया जा सके। [illegible] सभी पाठ्यक्रमों को पर्यावरण से जोड़[illegible]ल रही है, वहां शायद यही सही [illegible] त्वों की ओर गम्भीरता से दे[illegible] भ्रमण और अपने पर्यावरण के [illegible] रुख करें।

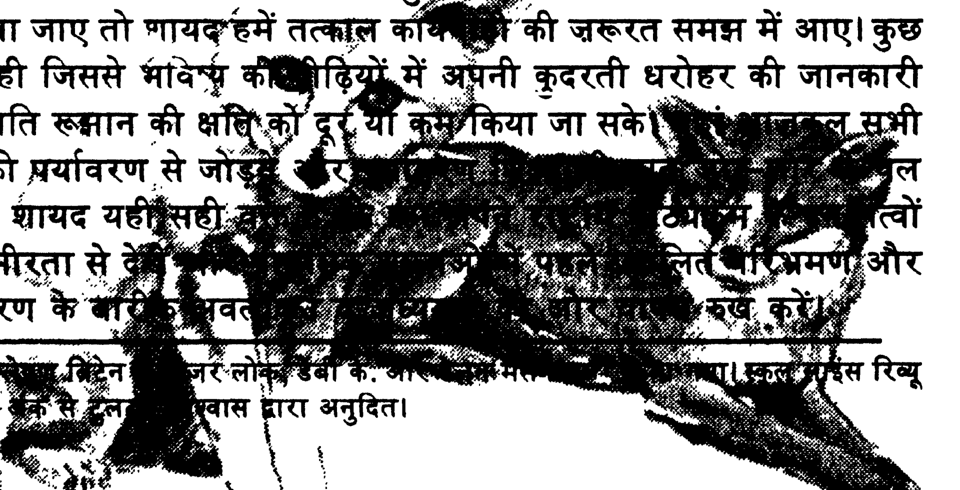

[illegible]क्षण-वि[illegible] [illegible]जर लोक[illegible] [illegible]। स्कूल साइंस रिव्यू [illegible] जून 1995 [illegible] द्वारा अनुदित।

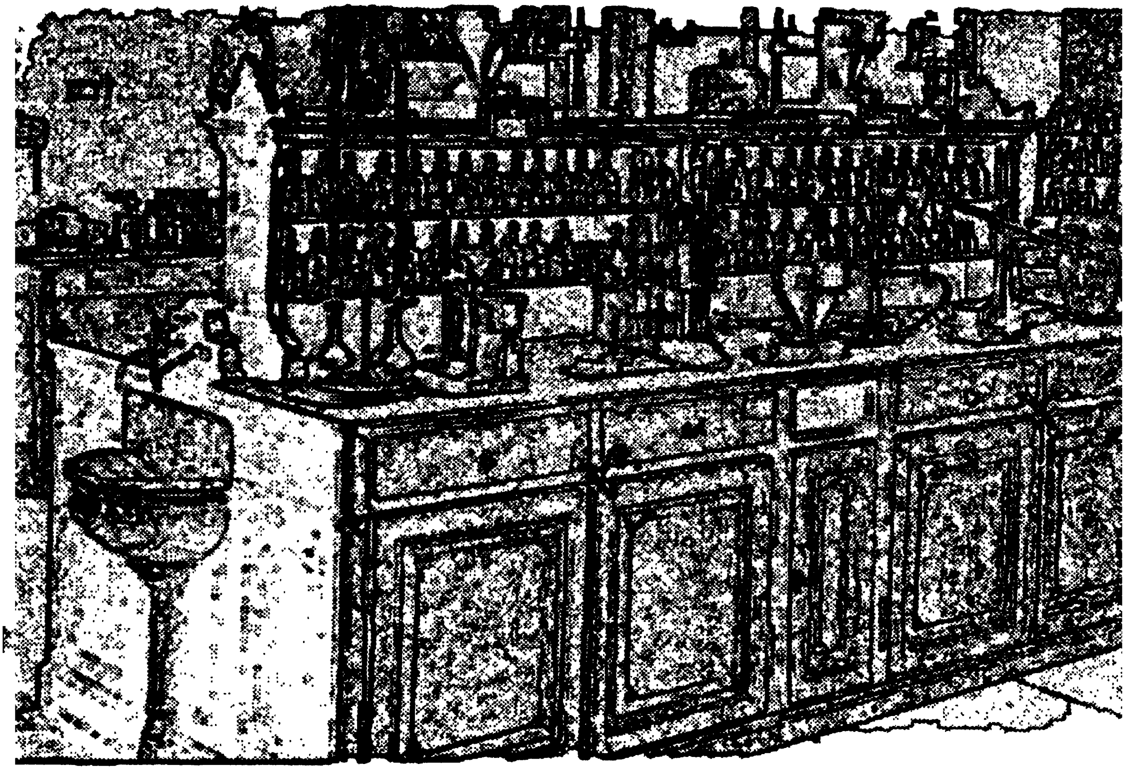

परमाणु भार की गुत्थी अणु-परमाणु भेद से सुलझी

● सुशील जोशी

परमाणु भार पढ़ना कितना आसान लगता है न आज। लेकिन रसायनज्ञों के लिए इतना आसान नहीं रहा रास्ता परमाणु भार निकालने का। पचास साल से भी ज्यादा लगे इस उलझन को सुलझाने में।

पानी का सूत्र (H_2O) या खड़िया का सूत्र ($CaCO_3$) लिखते हुए क्या आपने कभी सोचा है कि हमें ये सूत्र पता कैसे चले? मसलन पानी को H_2O की बजाय HO या HO_2 या H_2O_2 क्यों नहीं लिख देते? आखिर रसायन शास्त्री इस बात पर सहमत कैसे हुए कि पानी का रासायनिक

सूत्र H_2O ही लिखा जाएगा?

इसी सवाल को दूसरी तरह से निम्नानुसार रखा जा सकता है कि हम कैसे जानते हैं कि पानी के एक अणु में हाइड्रोजन के दो परमाणु तथा ऑक्सीजन का एक परमाणु होता है? आखिर जब हाइड्रोजन और ऑक्सीजन की परस्पर क्रिया होती है और पानी बनता है तो किसी ने बैठकर परमाणुओं की गिनती तो की नहीं है। और उनकी गिनती करना संभव भी नहीं है। रासायनिक क्रियाओं के दौरान जिस चीज़ का मापन होता है, वह है क्रिया करने वाले पदार्थों तथा परिणामी पदार्थों की कुल मात्रा। अर्थात 8 ग्राम ऑक्सीजन + 1 ग्राम हाइड्रोजन = 9 ग्राम पानी। तो इस जानकारी से यह कैसे समझा गया कि पानी H_2O ही है। दरअसल रसायनशास्त्र की इस महत्वपूर्ण समस्या को सुलझाने में जॉन डाल्टन की भूमिका प्रमुख रही।

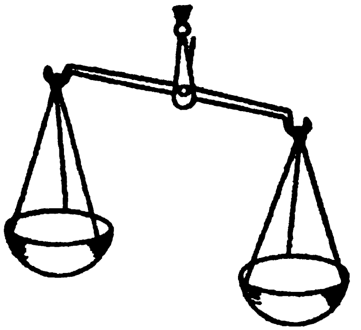

हिसाब गैसों के वज़न से

डाल्टन का मत था कि प्रकृति एक सरल शै है। इसलिए यदि तत्व परस्पर क्रिया करेंगे तो एक-एक के सरल अनुपात में करेंगे। यानी हाइड्रोजन का एक परमाणु ऑक्सीजन के एक परमाणु से संयोग करेगा और चूंकि 1 ग्राम हाइड्रोजन, 8 ग्राम ऑक्सीजन से मिलकर 9 ग्राम पानी बनाती है इसलिए 1 ग्राम हाइड्रोजन में ठीक उतने ही परमाणु होंगे जितने कि 8 ग्राम ऑक्सीजन में हैं। इसके आधार पर डाल्टन ने कहा कि ऑक्सीजन का एक परमाणु हाइड्रोजन के एक परमाणु से 8 गुना भारी होगा*।

चूंकि हाइड्रोजन सबसे हल्का तत्व था इसलिए डाल्टन ने उसका भार एक इकाई माना। इस पैमाने पर ऑक्सीजन का परमाणु भार 8 हुआ तथा अन्य तत्वों के परमाणु भार भी इसी पैमाने व सरलता की दलील के आधार पर निकालकर डाल्टन ने परमाणु भारों की एक तालिका प्रकाशित की थी।

हिसाब गैसों के आयतन से

डाल्टन ने मूलतः वजन के अनुपातों के आधार पर रासायनिक सूत्र बनाए थे। उसके अनुसार पानी का सूत्र HO ही था। परन्तु मात्रा नापने का एक और तरीका हो सकता है। वह तरीका है आयतन नापने का। गैसीय पदार्थों की क्रिया के दौरान आयतन संबंधी मापन के प्रयोग गैलुसेक ने किए। उसने पाया कि गैसों

* परन्तु यदि हम यह मानें, जो सही भी है, कि हाइड्रोजन के दो परमाणु ऑक्सीजन के एक परमाणु से संयोग करते हैं, तो ऑक्सीजन का एक परमाणु हाइड्रोजन से 16 गुना भारी होगा क्योंकि तब 1 ग्राम हाइड्रोजन में उपस्थित हाइड्रोजन के परमाणुओं की संख्या 8 ग्राम ऑक्सीजन में उपस्थित परमाणुओं की संख्या से दुगनी होगी।

डाल्टन का सरलता का तर्क

जॉन डाल्टन

डाल्टन का सरलता का तर्क वास्तव में मात्र सरलता का तर्क नहीं था। उस समय रासायनिक संयोग के लिए कारक तत्वों पर मौजूद आवेश को ज़िम्मेदार माना जाता था। यानी यह माना जाता था कि एक तत्व पर धनावेश तथा दूसरे पर ऋणावेश होने पर वे आपस में क्रिया करते हैं। चूंकि अलग-अलग तत्वों के एक-एक परमाणुओं की आपस में क्रिया हो जाने पर ये आवेश उदासीन हो जाएंगे इसलिए उनके साथ और परमाणुओं के जुड़ाव का कोई कारण नहीं है।

दरअसल डाल्टन ने कहा कि जब दो तत्वों का एक ही यौगिक ज्ञात हो तो माना जाना चाहिए कि उसमें तत्वों के एक-एक परमाणु ही जुड़े हैं। यदि कोई दो तत्व आपस में जुड़कर एकाधिक यौगिक बनाएं तो उनके रासायनिक सूत्र आनुपातिक आधार पर निकाले जाने चाहिए। जैसा कि हम आज जानते हैं डाल्टन का यह तर्क गलत था।

की परस्पर क्रिया आयतन के सरल अनुपात में होती है। उदाहरण के लिए 2 लीटर हाइड्रोजन व 1 लीटर ऑक्सीजन परस्पर क्रिया करके 2 लीटर जलवाष्प बनाते हैं। उनके आयतनों का अनुपात 2:1:2 हुआ। गौरतलब है कि आयतनों की तुलना करने के लिए सभी आयतन समान तापमान व दबाव पर नापना ज़रूरी है।

गैलुसेक ने स्वयं इन प्रयोगों के आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला मगर निष्कर्ष तो साफ था। जब पदार्थ परमाणुओं के रूप में क्रिया करते हैं और आयतनों में सरल अनुपात है तो परमाणु व आयतन का कुछ संबंध होना ही चाहिए यह स्पष्ट था। इस तर्क के आधार पर बर्ज़ीलियस ने मत व्यक्त किया कि या तो गैसों के बराबर आयतनों में परमाणुओं की संख्या बराबर होगी या इस संख्या का कोई सरल गुणज होगी। जैसे पानी को लें:

हाइड्रोजन + ऑक्सीजन → पानी
2 आयतन + 1 आयतन → 2 आयतन
2n कण + 1n कण → 2n कण

एक इकाई आयतन में कणों की संख्या n है। जैसे यदि हम एक आयतन में कणों की संख्या n =10 मान लें तो बर्ज़ीलियस के तर्क का निष्कर्ष यह होगा कि हाइड्रोजन के 2 इकाई आयतन में 20 कण होंगे और ऑक्सीजन के एक इकाई आयतन में 10 कण होंगे। अर्थात बर्ज़ीलियस के अनुसार पानी में हाइड्रोजन व ऑक्सीजन के परमाणुओं की संख्या का अनुपात 2:1 होगा। लिहाज़ा पानी का सूत्र H_2O होगा।

बर्ज़ीलियस

परमाणु भार

एक बात ध्यान देने योग्य है। चाहे डाल्टन हो या बर्ज़ीलियस, सब परमाणु भारों की गणना तुलनात्मक रूप से ही करते थे। इसलिए ये सारे परमाणु भार (और आज भी हम जिन परमाणु भारों का इस्तेमाल करते हैं) मूलतः तुलनात्मक परमाणु भार हैं। डाल्टन ने हाइड्रोजन को एक मानकर सारी गणनाएं की थीं। बर्ज़ीलियस ने ऑक्सीजन को 100 मानकर सभी तत्वों के परमाणु भार निकाले। आज हम जिन परमाणु भारों का इस्तेमाल करते हैं वे कार्बन के एक विशेष आइसोटोप को मानक मानकर निकाले गए हैं।

डाल्टन को इस तर्क व निष्कर्ष से घोर आपत्ति थी। प्रमुख आपत्ति यह थी कि इसके अनुसार यदि पानी का एक परमाणु बनाना हो तो ऑक्सीजन के परमाणु के टुकड़े करने होंगे।

हाइड्रोजन + ऑक्सीजन → पानी
2 आयतन + 1 आयतन → 2 आयतन
2 परमाणु + 1 परमाणु → 2 परमाणु
1 परमाणु + 1/2 परमाणु → 1 परमाणु

यह निष्कर्ष डाल्टन के परमाणु सिद्धांत के विपरीत था। जिसके अनुसार परमाणु पदार्थ की सबसे छोटी इकाई थी और उसे छोटे टुकड़ों में तोड़ा नहीं जा सकता था।

बहरहाल बर्ज़ीलियस ने अपने तरीके का उपयोग करते हुए कई तत्वों के परमाणु-भारों की गणना करके एक ऐसी तालिका छापी जो डाल्टन की तालिका से काफी भिन्न थी।

परमाणु भार का अखाड़ा

बस अब क्या था बर्ज़ीलियस की देखा-देखी कई सारे लोगों ने अन्य तरीकों का इस्तेमाल करके परमाणु भार व रासायनिक सूत्र निकालना शुरू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि अफरातफरी-सी मच गई। परमाणु भार निकालने के तरीके अलग-अलग होते और मानक अलग-अलग होते थे। सूत्र एक दूसरे से मेल नहीं खाते। मसलन, बताते हैं कि एसिटिक एसिड जैसे सरल पदार्थ के 13 अलग-अलग सूत्र निकल आए थे!

धीरे-धीरे मात्र परमाणु भार पर आधारित शोध-पत्रों को पढ़ पाना दुभर हो गया। सबके अपने-अपने निजी परमाणु भार होते थे। ऐसी स्थिति में कई लोगों ने परमाणु भार का उपयोग ही बंद कर दिया। अधिकतर लोग तो मात्र संयोजी भार का उपयोग करने लगे। संयोजी भार मतलब किसी एक पदार्थ की जितनी मात्रा दूसरे पदार्थ की किसी निश्चित मात्रा से संयोग करे। जैसे पानी में ऑक्सीजन का संयोजी भार 8 ग्राम है तथा हाइड्रोजन का संयोजी भार 1 ग्राम है।

परमाणु पर संदेह

परमाणु भार की अफरा-तफरी के चलते हालात इतने बुरे हो गए कि कई लोग तो परमाणु के अस्तित्व पर ही संदेह करने लगे। परमाणु के अस्तित्व पर सवाल या अविश्वास तो डाल्टन के जीवनकाल में ही शुरू हो चुका था। मसलन 1826 में जब डाल्टन को रॉयल सोसायटी का स्वर्ण पदक दिया गया तब सोसायटी के तत्कालीन अध्यक्ष हम्फ्री डेवी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि यह पदक "स्थिर अनुपात के नियम की खोज के लिए दिया जा रहा है। जिसे आमतौर पर परमाणु सिद्धांत कहा जाता है।"

ध्यान दें कि रॉयल सोसायटी काफी सावधानी बरतती थी।

दूसरी तरफ एक अन्य रसायनज्ञ ड्यूमास ने गैसों की परस्पर क्रिया के अजीबो-गरीब परिणामों से त्रस्त होकर कहा था "यदि मेरा बस चलता तो मैं विज्ञान से परमाणु का नामोनिशान मिटा देता।" कार्बनिक रसायनज्ञ फ्रेडरिक व्होलर का मत था कि "इस सबकी वजह से कार्बनिक रसायन किसी को भी पागल बना देने के लिए काफी है।"

यानी कुल मिलाकर स्थिति यह थी कि यदि परमाणु भार की गुत्थी न सुलझती तो शायद परमाणु अपने ही भार तले दबकर खत्म हो जाता!

आश्चर्य की बात यह है कि अफरा-तफरी के इस पूरे दौर में किसी का भी ध्यान अमीदियो एवोगेड्रो के विचारों की ओर नहीं गया जो 'जर्नल द फिज़ीक' के चार पन्नों में सिमटे पड़े थे। और इन चार पन्नों में पूरी समस्या का हल मौजूद था। यों कह सकते हैं कि एवोगेड्रो के विचारों के लिए जिस माहौल की ज़रूरत थी वह तैयार हो रहा था।

बहरहाल त्रस्त रसायनज्ञों में से एक थे ऑगस्ट केकुले। जी हां, वही केकुले जिन्हें हम आमतौर पर बेंज़ीन की रचना के मामले में जानते हैं। केकुले ने एक सकारात्मक पहल की जो विज्ञान के इतिहास में अभूतपूर्व थी। उन्होंने दुनिया भर के रसायनज्ञों का एक सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन का मकसद था – परमाणु भार को लेकर मचे अखाड़े का कुछ सर्वमान्य हल निकालना

वैज्ञानिकों का यह प्रथम सम्मेलन जर्मनी के कार्लस्रुहे नाम के स्थान पर

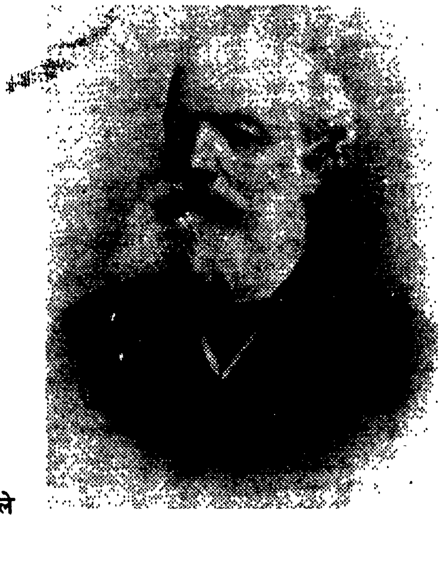

ऑगस्ट केकुले

अणु-परमाणु भेद

एवोगेड्रो

एवोगेड्रो के विचारों में दो बातें गौरतलब हैं। पहली बात तो यह कि एवोगेड्रो के विचार किसी सैद्धांतिक समझ से नहीं उभरे थे। गैलुसेक के प्रयोग और डाल्टन के परमाणु सिद्धांत के बीच एक व्यवहारिक तालमेल बैठाने के लिए ही अणु (एकाधिक परमाणुओं से मिलकर बने कण) की अवधारणा प्रस्तुत की गई थी।

दूसरी बात यह है कि एवोगेड्रो का परचा प्रकाशित होने के समय यह माना जाता था कि तत्वों के बीच रासायनिक क्रिया तभी होती है जब उन पर विपरीत आवेश मौजूद हो। लिहाज़ा यह स्वीकार करना काफी मुश्किल था कि एक ही तत्व के दो या अधिक परमाणु आपस में क्रिया करेंगे, जबकि उन पर समान आवेश है। 1860 में रासायनिक क्रिया का यह आवेश आधारित सिद्धांत कमज़ोर पड़ने लगा था। ऐसे समय में एवोगेड्रो के विचारों को आसानी से मंजूरी मिल गई। मगर सबसे बड़ी बात यह थी कि अफरा-तफरी से निजात पाने का यह एक व्यवहारिक तरीका था।

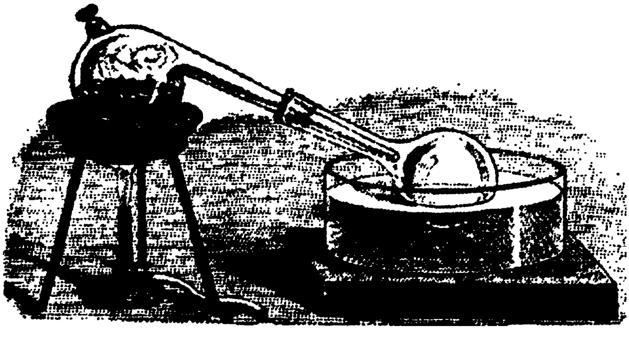

1860 में हुआ। यदि इस सम्मेलन में कैनिज़रो नामक अध्यापक मौजूद न होता, तो शायद परमाणुवाद का जनाज़ा निकल ही गया होता।

कैनिज़रो को हम कार्बनिक रसायन की 'कैनिज़रो प्रतिक्रिया' के संदर्भ में जानते हैं। मगर रसायनशास्त्र में शायद उसका सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उसने सम्मेलन में मौजूद रसायनज्ञों का ध्यान एवोगेड्रो के उस परचे की ओर दिलाया जो उस सम्मेलन से लगभग 50 साल पहले 1811 में लिखा गया था। सम्मेलन में कैनिज़रो ने बताया कि एवोगेड्रो के तरीके से इस समस्या का समाधान तुरंत हो सकता है। सवाल उठता है कि आखिर वह जादुई विधि क्या थी?

एवोगेड्रो का निदान

1811 के परचे मे एवोगेड्रो ने मूलत: यह स्पष्ट किया कि पदार्थ के सबसे छोटे कण दो प्रकार के होते हैं। एक होते हैं परमाणु और दूसरे अणु। हालांकि एवोगेड्रो

ने पूरी बात को काफी जटिल ढंग से पेश किया था मगर सार यह था कि अणु का मतलब है एकाधिक परमाणुओं से मिलकर बने कण। सबसे बड़ी बात यह थी कि एवोगेड्रो ने तत्वों के अणु की भी बात की थी। उनका मत था कि कई तत्व परमाणुओं के रूप में नहीं बल्कि अणुओं के रूप में रहते हैं। एवोगेड्रो ने यह भी बताया कि गैसों के बराबर आयतन में अणुओं की संख्या बराबर होती है।

इस तरह एवोगेड्रो ने अणु—परमाणु का भेद करके पूरी समस्या का एक हल दिया था। एवोगेड्रो के मुताबिक हाइड्रोजन व ऑक्सीजन की क्रिया कुछ इस तरह समझी जा सकती है:

हाइड्रोजन + ऑक्सीजन → पानी
2 आयतन + 1 आयतन → 2 आयतन
2n अणु + 1n अणु → 1n अणु
1 अणु + 1/2 अणु → 1 अणु

अर्थात एवोगेड्रो का मत था कि गैसों के बराबर आयतन में परमाणुओं की बजाए अणुओं की संख्या बराबर होती है। अणुओं को विभाजित करना डाल्टन के सिद्धांत के विरुद्ध नहीं था क्योंकि एक अणु में एक से अधिक परमाणु हो सकते हैं। जैसे कि हाइड्रोजन के एक अणु (H_2) में दो परमाणु हैं या ऑक्सीजन के एक अणु (O_2) में दो परमाणु हैं।

एक बार यह तय हो जाने पर कि सभी गैसों के बराबर आयतन में अणुओं की संख्या बराबर है, बात आसान हो जाती है। इसके आधार पर कैनिज़ारो ने जो विधि सुझाई वह यहां बाक्स में दी गई है। वैसे आप स्वयं भी ज़रा अपने अक्ल के घोड़ों की लगाम ढीली छोड़ें तो समझ पाएंगे कि यह काम कैसे हो सकता है।

सुशील जोशी – पर्यावरण, विज्ञान विषयों पर सतत लेखन। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध।

1. एवोगेड्रो के मुताबिक पानी का सूत्र H_2O आता है।
2. यदि समस्त गैसों के बराबर आयतन में बराबर संख्या में अणु हैं तो गैसों का अणु भार उनके घनत्व के समानुपाती होगा।
   $M \propto D$ या $M = kD$,
   M = अणु भार, D = घनत्व, k = समानुपात स्थिरांक
3. अगर किसी गैस का अणुभार मालूम है तो उसका घनत्व निकालकर, स्थिरांक की गणना की जा सकती है। हाइड्रोजन व ऑक्सीजन का उदाहरण लेकर देखते हैं। हाइड्रोजन का परमाणु भार 1.0 है। इसका अणु दो परमाणुओं से मिलकर बना है। अतः हाइड्रोजन का अणु भार 2 हुआ।
   ऑक्सीजन का परमाणु भार 16 है और यह भी दो परमाणुओं से मिलकर

एक अणु बनाती है। अतः ऑक्सीजन का अणु भार 32 हुआ।

4. इन आंकड़ों के आधार पर k की गणना:

गैस	घनत्व	अणु भार	k का मान
H_2	0.0899	2	22.25
O_2	1.429	32	22.40

k का औसत मान = 22.33

5. अब मान लीजिए कार्बन व क्लोरीन का परमाणु भार पता करना है। इन तत्वों के विभिन्न गैसीय यौगिकों के आंकड़े लेकर निम्नानुसार विश्लेषण करना होगा:

गैसीय पदार्थ	घनत्व ग्राम प्रति लीटर	अणु भार M=kD	तत्वों की प्रतिशत मात्रा			एक आणविक इकाई में तत्वों की मात्रा			संभावि सूत्र
			C	H	Cl	C	H	Cl	
मीथेन	0.715	16.0	74.8	25.0	–	12.0	4.03	–	CH_4
इथेन	1.340	29.9	79.8	20.2	–	23.9	6.04	–	C_2H_6
क्लोरोफार्म	5.34	119.1	10.05	0.844	89.10	12.0	1.01	106.2	CHCl
इथाइल-क्लोराइड	2.88	64.3	37.2	7.8	55.0	23.9	5.02	35.4	C_2H_5(
कार्बन टेट्रा-क्लोराइड	6.83	152.6	7.8	–	92.9	11.9	–	141.0	CCl_4

6. स्तंभों को शुरुआत से एक-एक करके देखते हैं।

किसी भी गैस का घनत्व तो प्रयोगों से पता किया ही जा सकता है। (स्तंभ-1) स्थिरांक का मान निकाल लिया है और घनत्व मालूम है, इन दोनों से अणुभार की गणना की जा सकती है। (स्तंभ-2)

प्रयोगों द्वारा गैस में तत्वों की प्रतिशत मात्रा पता लगाई जा सकती है। (स्तंभ-3, 4, 5)

7. एक आणविक इकाई में तत्व का अनुपात पता करने का तरीका मीथेन के उदाहरण से देखते हैं।

100 इकाई मीथेन में कार्बन की मात्रा = 74.8

16 इकाई मीथेन (अणु भार) में कार्बन की मात्रा $= \frac{74.8 \times 16}{100}$

$= 12.0$

100 इकाई मीथेन में हाइड्रोजन की मात्रा = 25.0

$$16 \text{ इकाई मीथेन में हाइड्रोजन की मात्रा} = \frac{25.0 \times 16}{100}$$
$$= 4.0$$

8. इसी तरह अन्य गैसों के लिए भी उनमें मौजूद तत्वों की मात्रा निकाल ली जाती है। अब यह देखा जाता है कि विभिन्न गैसों की एक आणविक इकाई में उपस्थित तत्वों की मात्रा का अधिकतम समापवर्त्य (Highest Common Factor) क्या है।

मसलन उपरोक्त उदाहरण में विभिन्न यौगिकों में कार्बन की मात्राओं का अधिकतम समापवर्त्य 12 है। अर्थात किसी भी यौगिक की एक आणविक इकाई में कार्बन इससे कम नहीं पाया जाता। यानी यही कार्बन की सबसे छोटी इकाई मानी जा सकती है। लिहाज़ा कार्बन का परमाणु भार 12 माना जा सकता है।

यदि कोई यौगिक ऐसा मिलता है जिसमें कार्बन की मात्रा 6 पाई जाए तो फिर हमें कार्बन का परमाणु भार संशोधित करना होगा और उसी के अनुसार उपरोक्त तालिका में दिए गए रासायनिक सूत्र भी संशोधित होंगे। तब तक के लिए कार्बन का परमाणु भार 12 मानना ही युक्तिसंगत होगा।

इसी तरह से अन्य तत्वों के परमाणु भार भी निकाले जा सकते हैं।

● सुशील जोशी

डाल्टन का सरलता का तर्क

दरअसल डाल्टन ने कहा कि जब दो तत्वों का एक ही यौगिक ज्ञात हो तो माना जाना चाहिए कि उसमें तत्वों के एक-एक परमाणु ही जुड़े हैं। यदि कोई दो तत्व आपस में जुड़कर एकाधिक यौगिक बनाएं तो उनके रासायनिक सूत्र आनुपातिक आधार पर निकाले जाने चाहिए। जबकि इस तरह से निकाले गए कई सूत्र सही थे परन्तु जैसा कि हम आज जानते हैं डाल्टन का यह तर्क गलत था।

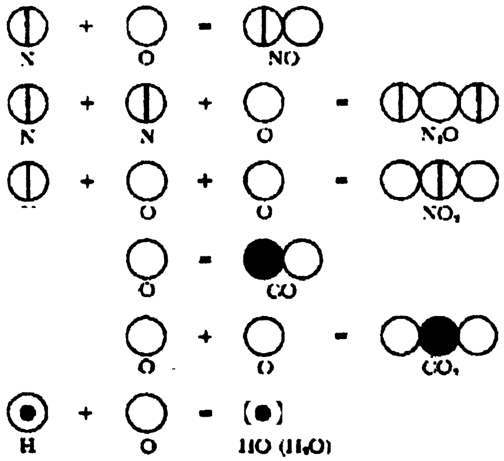

नाइट्रस गैस (नाइट्रिक ऑक्साइड)

नाइट्रस ऑक्साइड

नाइट्रिक अम्ल (नाइट्रोजन डाइऑक्साइड)

कार्बोनिक ऑक्साइड (कार्बन मोनोऑक्साइड)

कार्बोनिक अम्ल (कार्बन डाइऑक्साइड)

पानी

कैसे बदला रंग अचानक.....

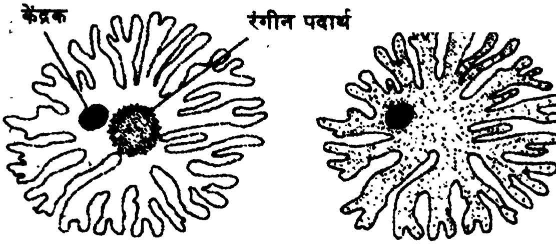

प्रकृति काफी रंगीन है। अलग-अलग रंग असंख्य प्राणियों के...........

ऐसे ही जब समय के साथ-साथ मनुष्य या अन्य किसी प्राणी का रंग थोड़ा बहुत बदलता है तो भी कोई खास हैरानी नहीं होती। लेकिन अपने आसपास कुछ ऐसे प्राणी भी हैं जिनके शरीर के रंगों में परिवर्तन काफी तेज़ी से होता है। प्रजनन काल में कबूतर या मेंढक के गले का रंग, कुछ खास तरह की मछलियों में रंग बदलने की क्षमता, गिरगिट का रंग बदलना...... कई ऐसे उदाहरण सामने आते हैं जिन्हें देखकर सवाल उठता है कि इनकी चमड़ी का रंग अचानक कैसे बदल जाता है? कौन-सी रचनाएं इस जादूनुमा खेल को संभव बनाती हैं और क्यों होता है ऐसा।

मनुष्यों में काला या भूरा-सा रंग मेलानिन पैदा करने वाली कोशिकाओं के कारण होता है, यह तो हर कहीं पढ़ने को मिल जाता है परन्तु पशु-पक्षियों में पाए जाने वाले चटकीले-भड़कीले रंग एक खास तरह की कोशिकाओं की वजह से दिखते हैं। इन कोशिकाओं में रंगीन पदार्थ (पिगमेंट) पाए जाते हैं। क्रोमेटोफोर भी कहते हैं इन कोशिकाओं को।

एकदम से रंग बदल पाना चमड़ी में पाई जाने वाली इन्हीं कोशिकाओं की खासियत है जिसके कारण गिरगिट जैसे जीव क्षणभर में रंग बदल लेते हैं। ये क्रोमेटोफोर कोशिकाएं मुख्यत: तीन तरह की होती हैं। हरेक में रंग बदलने का तरीका कुछ फर्क होता है। एक तरह के क्रोमेटोफोर में उनमें मौजूद रंगीन पदार्थ को कोशिका के बीच में इकट्ठा करके रखा जा सकता है या फिर पूरी कोशिका में फैलाया जा सकता है। रंगीन पदार्थ को बीच में छोटे से बिंदु में केंद्रित कर देने पर जंतु का रंग हल्का-पीला-सा हो जाता है। परन्तु जब रंगीन पदार्थ पूरी कोशिका में फैला दिया जाए तो जंतु की चमड़ी गाढ़ी रंगीन नज़र आती है।

दूसरे तरह की क्रोमेटोफोर कोशिकाएं अमीबा की तरह अपना आकार बदल सकती हैं। जब रंग हल्का करना हो तो ये कोशिकाएं एकदम संकुचित हो जाती हैं ताकि अन्य कोशिकाओं का हल्का-सा रंग ही दिखाई दे। जब गहरा रंग लाना हो तो ये चमड़ी पर चपटी होकर फैल जाती हैं।

तीसरी तरह के क्रोमेटोफोर दूसरी किस्म से काफी मिलते-जुलते हैं। इनका भी आकार बदल सकता है। परंतु वह तभी संभव होता है जब इनसे जुड़े हुए अन्य ऊतक (टिशू) इन्हें चारों तरफ से खींचते हैं।

यह ज़रूरी नहीं है कि किसी प्राणी में केवल एक ही तरह के क्रोमेटोफोर हों, कुछ में तो तीन-चार किस्म के क्रोमेटोफोर एक साथ पाए जाते हैं। ये सब कोशिकाएं एक ही रंग से भरी पड़ी हों यह भी ज़रूरी नहीं है। इन सब कोशिकाओं और रंगों के परिणामी प्रयास से ही जीवजंतुओं का पलक भर में रंग बदलना संभव हो पाता है।

इन रंगीन कोशिकाओं का नियंत्रण तंत्रिका तंत्र से भी होता है और हार्मोन्स से भी। इसलिए सब जीव-जंतुओं में रंग परिवर्तन एक ही तरह के कारणों से नहीं होता – भय, उत्तेजना, तापमान, वातावरण के रंग आदि बहुत-सी बातों से प्रभावित होता है यह बदलाव। * * *

सात अजूबे इस दुनिया के .....

● लुईस थॉमस
अनुवादः मनोहर नोतानी

वो दुनिया के पुराने वाले सात अजूबे किसने देखे। लेकिन अगर आज की दुनिया से सात अजूबों को खोजा जाए तो वो कौन से होंगे?

अभी-अभी मुझे एक खत मिला। एक साहब हैं किसी पत्रिका के संपादक। उनका खत। चाहते हैं मैं छह और बंदों के साथ मिल-बैठकर अब पुरानी पड़ चुकी उस लिस्ट को खारिज करूं जो दुनिया के सात अजूबों से ताल्लुक रखती है और बने एक ताज़ा-तरीन फेहरिस्त – आधुनिक दुनिया के सात चमत्कारों की। मैंने कह दिया मुझसे नहीं होगा। और इतने कम समय में तो कतई नहीं। फिर भी यह सवाल मेरे अंदरूनी गलियारे में तब से चहलकदमी कर रहा है।

आखिर मुझे दुनिया के उन सात अजूबों की लिस्ट पर नज़र डालनी ही थी जो बैबीलोन के लटकते गुलज़ारों को अपने में शुमार किए थी। और फिर 'अजूबा' लफ्ज़ भी तो था जिस पर गौर फर्माना था। ताकि हम मुद्दे को ठीक-ठीक समझ पाएं। कुल मिलाकर पल्ले यह पड़ा कि यदि कोई पत्रिका किन्हीं सात हज़रातों को किन्हीं सात ऐसी चीज़ों पर अगरचे हमख्याल कर पाए जिन्हें वे दुनिया के सात आश्चर्य कह कर बुला सकें तो आखिर दुनिया के सात आश्चर्य तो वहीं मौजूद हो जाएंगे! लेकिन ऐसी हमख्याली आसान है नहीं। अजूबा लफ्ज़ जो ठहरा। कोई आसान-सा सिर्फ एक मतलब थोड़े ही है इसका – कुछ अलहदा किस्म का, जो आम न हो; और जिसके

बाबत सवाल भी उठें तो लाजवाब। जो निगाह डालने वाले को एक अचरज भरी उलझन में डाल दे। इतना कि वो यकायक कह उठे, "नामुमकिन, मुझे तो यह सब अजीब-सा लगता है।" किसी भी अद्भुत चीज़ की मौजूदगी हमारे अंदर जो अहसास जगाती है उसमें तारीफ के साथ-साथ मुस्कुराहट भी खिली रहती है।

खैर तय किया कि यह लिस्ट मैं बनाऊंगा। किसी रिसाले के लिए नहीं। अभी उठ रही है जो बात, उस बात के लिए। लिस्ट उन चीज़ों की जिन्हें लेकर मैं सबसे ज़्यादा कुतूहल में डूबता-उतरता हूं। शुरूआत को लेकिन मैं आखिर तक लटका कर रखूंगा और चलूंगा दूसरी पायदान से।

* * *

मेरे द्वारा मुकर्रर दो नम्बर का अचम्भा है – बैक्टीरिया की वो प्रजातियां जिन्हें इस धरती पर सन '82 के बाद ही देखा जा सका। ऐसे जीव जो हमारे ख्याल की देहरी भी न छू पाए थे इससे पहले। (जो कुदरत के उन कायदों की खिल्ली उड़ाते ऐसे जीते-जागते सबूत थे जिन कायदों में हमारी आस्था काफी गहरी थी।) ये मानो सीधे दोजख से निकल कर आए हुए जीव थे क्योंकि धरती के उस दहकते अंतस को हम किसी दोजख से कम नहीं समझते न! ऐसा दोजख जहां किसी किस्म की बसाहट मुमकिन न हो।

ऐसे इलाकों पर हमारी विज्ञानी नज़र अभी हाल ही में पड़ना शुरू हुई है – जबसे धरती की सतह से 2500 मीटर या इससे भी ज़्यादा गहरे उतर जाने वाली पनडुब्बियां बनने लगी हैं। इन पनडुब्बियों की पहुंच समंदर के पेंदे में मौजूद उन जगहों तक होती है जहां छोटे–छोटे सूराख गरमागरम समुद्री पानी उगलते रहते हैं। और यह सिर्फ गर्म पानी, या भाप, या प्रयोगशालाई ऑटोक्लेव में मौजूद बहुत अधिक दाब व ताप वाली वह भाप ही नहीं है (जिस पर हम हर तरह के सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म जीवन के सफाए के लिए बरसों से भरोसा करते रहे हैं)। वास्तव में यह उससे भी अधिक दबाव वाला अत्यन्त गर्म पानी है जिसका तापमान 300 डिग्री सेल्सियस से भी कहीं ज़्यादा है। इतने अधिक तापमान पर किसी भी प्रकार के जीवन की उम्मीद करना खामखयाली ही होगी। इस तापमान पर तो प्रोटीन व डी.एन.ए. टूट-फूट जाएंगे, एन्ज़ाइम गलगला जाएंगे और कोई भी ज़िंदा शै क्षणभर में अपना दम तोड़ देगी। इसी कारण तो हमने शुक्र पर किसी भी तरह के जीवन की हर सम्भावना को निरस्त कर रखा है। और ठीक इसी वजह से हमने अपनी धरती पर आज से चार अरब वर्ष पहले जीवन के किसी भी प्रकार की मौजूदगी को खारिज कर दिया है।

लेकिन अभी हाल में बी. जे. ए. बैरोस व जे. डब्ल्यू. डेमिंग ने ठेठ गहरी समंदरी दरारों से खींचे गए पानी में धड़ल्ले से फलते-फूलते बैक्टीरिया पाए हैं। और इतना ही नहीं; टाइटेनियम की सीरिंजों में कैद व 250 डिग्री सेल्सियस तक गर्मशुदा, बहुत ज़्यादा दबाव वाले चेम्बरों

में सीलबंद ये बैक्टीरिया जब ऊपर सतह पर लाए जाते हैं तो न केवल वे जीवित रह पाते हैं बल्कि बड़े जोशोखरोश से अपनी आबादी भी बढ़ाते जाते हैं। और ये तभी मारे जा सकते हैं जब साधारण उबलते पानी में उन्हें यकायक 'बर्फाया' जा सके!

उस पर तुर्रा यह कि ये दिखते हैं एकदम साधारण बैक्टीरिया जैसे ही। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से निहारने पर इनकी बुनावट जो दिखती है, एकदम सामान्य — कोशिका भित्तियां, राइबोसोम एण्ड कम्पनी! और अगर ये, जैसा कि अब सुझाया जा रहा है, हम सबके बाप-दादे यानी आर्कि-बैक्टीरिया* हैं तो सवाल यह है कि आखिर इन्होंने या इनके पोतों-परपोतों ने ठंडे होने की तरकीब कहां से सीखी?

* * *

तीसरे नंबर का मेरा 'चमत्कार' है — ऑन्सीडेरेस गुबरैलों (Beetle) की एक प्रजाति। मेरे एक रोगविज्ञानी मित्र का सामना इनसे अपने ही घर के पिछवाड़े में हुआ, जहां शिरीष जैसे पौधों की भरमार है। यह कीट कोई नया जीव नहीं है लेकिन एक

*आर्कि-बैक्टीरिया — 1970 में कार्ल आर. वूज़ ने उन खास बैक्टीरिया का अध्ययन शुरू किया जो केवल उन्हीं हालातों में मिलते हैं जहां स्वतंत्र/मुक्त ऑक्सीजन नदारद होती है। इनमें से कुछ तो कार्बन-डाई-ऑक्साइड का मीथेन में अपचयन (रिडक्शन) कर देते हैं, चुनांचे मीथेनोजेनस, मीथेन बनाने वाले कहलाते हैं। जबकि बाकी बचे इस तरह के खास बैक्टीरिया कुछ ऐसी क्रियाओं में शामिल होते हैं जिनमें ऊर्जा पैदा होती है और जीवनाकूल परिस्थितियां बनती हैं — नोट करें, बिना किसी ऑक्सीजन के। वूज़ इन सारे बैक्टीरियाओं को एक ही थैली का चट्टा-बट्टा मानकर इन्हें एक नाम देते हैं — आर्कि-बैक्टीरिया। उनका सुझाव है कि जीवों के वर्गीकरण में इन्हें एक अलग ही किंगडम माना जाए।

'आधुनिक चमत्कार' कहलाए जाने के हक पर खरा उतरता है – अपने उन तमाम आधुनिक सवालों के कारण जो यह विकासवादी जीवशास्त्रियों के पाले में उछालता है। और ये सवाल ताल्लुक रखते हैं उन तीन बातों से जो इस गुबरैले की मादा के ज़हन में एक के बाद एक उभरती हैं। मादा गुबरैले के ज़हन में आने वाला सबसे पहला ख्याल तो शिरीष का पौधा ही होता है, जिसे वह खोज निकालती है और आसपास के सारे दीगर पौधों को नज़र-अंदाज़ करते हुए उसपर चढ़ जाती है। दूसरा ख्याल उस मादा के ज़हन में आता है अंडे देने के बाबत। उस पौधे की शाख पर रेंगते हुए लम्बाई में एक झिर्री-सी काटकर, इस झिर्री के अंदर वह अपने अंडे देती है। उसका तीसरा ख्याल अपनी औलादों की बेहतरी को लेकर होता है। गुबरैले के लार्वा चूंकि एक ज़िंदा पौधे में जीवित नहीं रह सकते, वह मादा एकाध फीट पीछे खिसक कर उस शाख पर एक गोल खंदक-सी बना देती है जो पेड़ की छाल को चीरती हुई अंदर कैम्बियम तक जाती है। इस खांचे को बनाने में उसे आठेक घंटे लग जाते हैं। और फिर वह चल देती है; ये न पूछो कहां? इस घेरदार काट से पेड़ की वह डाल मुरझा जाती है और हवा के झोंकों में धराशायी हो जाती है। लेकिन लार्वा बढ़ते रहते हैं; और अपनी अगली पीढ़ी में प्रवेश करते हैं और हमारे सारे सवाल धरे-के-धरे रह जाते हैं वहीं-के-वहीं। पहला सवाल यह कि आखिर विकास की इस फिल्म में उस मादा के ज़हन में ये आपस में एक-दूसरे से जुड़े तीन सवाल एक साथ भला आए तो आए कैसे? सवाल नंबर दो कि आखिर इन तीनों सवालों में से कोई भी एक

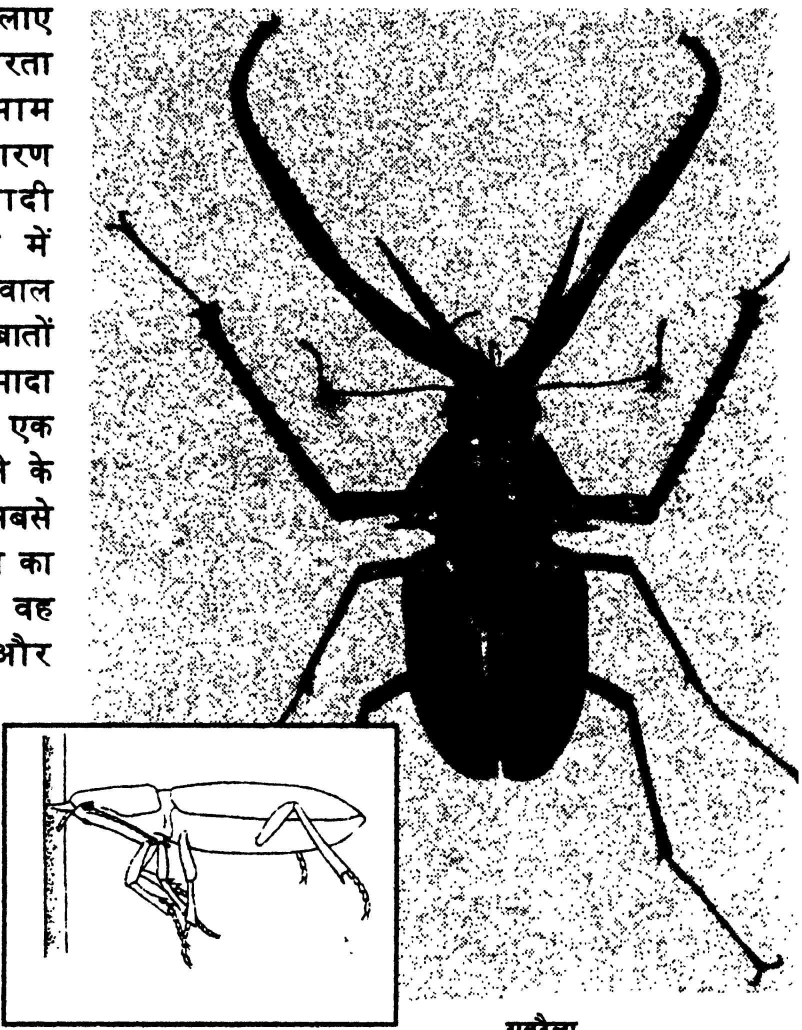

गुबरैला

सवाल कैसे अपने-आप बाकी दो सवालों के सिवा अपनी एक मुकम्मल शक्ल अख्तियार करता है और उस मादा गुबरैले के व्यवहार का एक स्थाई हिस्सा बन जाता है। अब आप ही सोचिए कि इस तरह की तीन एकदम जुदा-जुदा घटनाओं के गुबरैले के जीन्स में एकसाथ उभर आने की संभावना कितनी होगी – किसी एक खास किस्म का पौधा पसंद करना, अंडों के लिए झिर्री बनाना और फिर गिराने के मकसद से उस डाल पर एक खंदक-सी बना देना। यह सयानी मादा गुबरैला भला जानती है कि वह क्या कर रही है? आखिर उसके विकास की कड़ी में शिरीष का पौधा न जाने कैसे जुड़ गया?

शिरीष की ही बात करें। अगर इन्हें अपने हाल पर यूं ही छोड़ दिया जाए तो यह 25-30 बरस ही जी पाएंगे। लेकिन कटाई-छंटाई जो होती रहे तो अपनी ज़िंदगी खींचकर एक सदी भी पूरी कर डालें। गुबरैले की झिर्री बनाने वाली मशक्कत भी तो यही अंजाम दे रही है। गुबरैले और शिरीष का यह इश्क सहजीविता (सिम्बायोसिस) की एक नफीस मिसाल है – उस सहजीविता की जो कुदरत के पोर-पोर में पैठी हुई है, ऐसा माना जाता है। इस तरह की मिसालें

गुबरैला, शिरीष और अंडे की झिर्री: शिरीष का पेड़; (इनसेट) ऑन्सीडेरेस प्रजाति का गुबरैला कुछ इस तरह शाखा में एक झिर्री काटकर उसमें अंडा देती है।

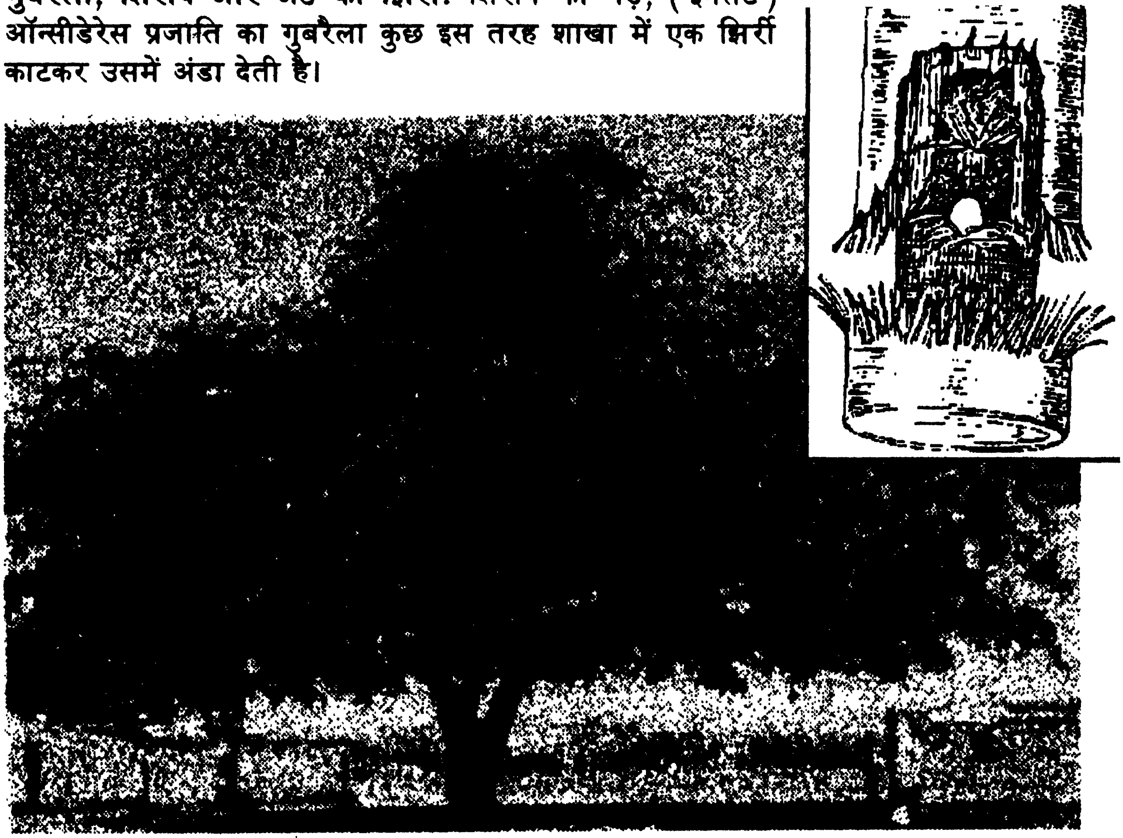

अगर हमारे बौद्धिक आले में सजी रहें तो हमारे ही लिए अच्छा होगा ताकि हमें लगातार अहसास होता रहे कि हम कितना कम जानते हैं अभी कुदरत के बारे में।

* * *

मेरी फेहरिस्त में चौथे नबंर का चमत्कार है एक रोगवाहक जीवाणु यानी स्क्रेपी वाइरस जो भेड़-बकरियों व तमाम अन्य जानवरों में एक घातक दिमागी बीमारी ले आता है। इसी वाइरस का एक नज़दीकी रिश्तेदार है – सी. जे. वाइरस। इस सी. जे. के कारण हम इंसानों में कभी-कभी सठियाने वाली बुद्धिक्षीणता के लक्षण आ जाते हैं। इस तरह के वाइरस 'धीमे वाइरस' कहलाते हैं। सिर्फ इसलिए क्योंकि जिस किसी में भी ये समाएं, वो एकदम बीमार नहीं पड़ेगा। कम-से-कम एकाध साल या दो साल भी लग सकते हैं। यह जो कुछ भी हो लेकिन उसकी खूबी यह है कि आज कुछेक से बढ़कर अगले साल अरबों की तादाद पार कर सकते हैं ये वाइरस। 'जो कुछ भी हो' जुमले का इस्तेमाल मैंने सोच समझकर ही किया है। कोई भी अब तक स्क्रेपी या सी. जे. वाइरस के डी.एन.ए. या आर.एन.ए. प्राप्त नहीं कर पाया है। हो सकता है कि डी.एन.ए./आर.एन.ए. हो, लेकिन शायद इतना कमतर कि पाया न जा सके। बहरहाल प्रोटीन काफी मात्रा में है इसमें। चुनांचे एक गंभीर मसला उठता है कि शायद वाइरस सब प्रोटीन ही प्रोटीन हो। लेकिन जहां तक हम जानते हैं प्रोटीन अपनी नकल खुद नहीं बनाता, कम-से-कम इस धरती पर तो नहीं ही। इस हिसाब से तो स्क्रेपी वाइरस पूरी जैविकी में सबसे अजीबोगरीब शै नज़र आता है। और जब तक किसी को इसकी खबर न लग जाए, तब तक यह आधुनिक चमत्कार की एक गादी पर विराजमान है ही!

* * *

मेरा जो पांचवां अचरज है वह हमारी नाक में है। नाक में कहीं ऊपर एक झिल्लीदार ऊतक (टिशू) होता है – हमारी प्राणशक्ति का केन्द्र-बिन्दु। इसके ज़रिए हम हवा अंदर लेकर बाहरी माहौल

की टोह लेते हैं, बू-ए-मोहब्बत का मज़ा लेते हैं, तम्बाकू के सुट्टे खींचते हैं, गुलाब की खुशबू में नहाते हैं और शायद पाकीज़गी की बू भी लेते हैं! इतनी सारी खुशबुओं को समेटकर, दिमाग के तहखानों तक फौरी संदेश दागकर, एक-के-बाद-एक विचित्र यादें जगाने का काम जो कोशिका करती है वह कम खुदा नहीं – एक तंत्रिका कोशिका है वो, एकदम प्रमाणित दिमागी कोशिका। हां, यह बात और है कि दिमाग से मीलों नीचे खिसक कर यह हमारी नाक में चली आई है – दुनिया भर की बुओं को सूंघती फिरती! आखिर अपनी अनुभूतियों को यह एक मुकम्मल शकल कैसे देती है भला? कैसे यह फुल-गेंदवा को और सब चीज़ों से फर्क कर पाती है और वह भी बिना किसी गफलत के। यह तंत्रिका-जैविकी का एक गहरा राज रहा है। अपने आप में ही एक अजूबा है यह। लेकिन बात अभी और भी है। नाक में घुसी हुई ये दिमागी कोशिकाएं, रीढ़धारियों के केन्द्रिय तंत्रिका-तंत्र की अन्य तंत्रिका कोशिकाओं के विपरीत, कुछेक हफ्तों में नष्ट हो जाती हैं; कोशिकाएं घिस–घिस कर मरती रहती हैं, और बदले में आती हैं एकदम ब्रांड-न्यू कोशिकाएं। मज़े की बात तो यह है कि ये ब्रांड-न्यू कोशिकाएं भी मीलों दूर दिमाग के उन्हीं नुक्तों से जाकर जुड़ती हैं जिनसे वे पहली वाली कोशिकाएं उसी अंदाज़ में जुड़ी थीं। नतीजतन सारी खुशबुओं की याद बदस्तूर कायम रहती है। हम इन कोशिकाओं की गहराइयों को अगर छू पाएं और समझ पाएं कि आखिर ये काम कैसे करती हैं – और फिर अगर इनकी उंगलियों पर नाचने वाले हमारे सारे मिज़ाजों, सारे फितूरों की बेपर्दगी भी कर पाएं तो हम अपने मन की थाह में कहीं ज़्यादा दूर तक जा पाएंगे। लेकिन दिल्ली अभी दूर है।

* * *

छठा अजूबा! झिझकता हूं क्योंकि फिर एक कीड़ा है, दीमक। लेकिन अब की बार फर्क यह कि यह खुद अकेला कोई अजूबा नहीं – परन्तु समूह में एक अजूबे की शक्ल अख्तियार कर लेता है। एक एकांकी दीमक को लेकर कोई अजब बात नहीं। देखा जाए तो एक अकेली दीमक का कोई वजूद ही नहीं है। जिस तरह से एक खालिस अकेले इंसान का ख्याल भी हमें नहीं आता, उसी तरह से

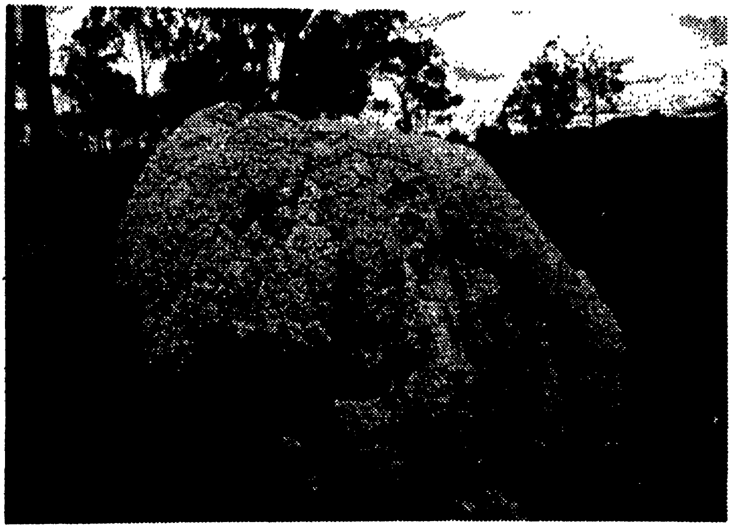

दीमक की बांबी

एक अकेली दीमक भला क्या भाड़ फोड़ेगी। दो या तीन दीमक? ऊहूं, बात कुछ बनी नहीं। क्या करेंगी, ज़्यादा-से-ज़्यादा शर्मा-शर्मी में एक-दूसरे को छू भर ही तो पाएंगी। इससे कुछ न होने का। लेकिन जोड़ते जाइए एक-के-बाद-एक दीमक और जब इनकी संख्या एक खास हद से बढ़ जाएगी तो देखिए चमत्कार। ऐसा लगेगा जैसे यकायक इन्हें कोई अजूबा संदेश मिला है। दस्ते के दस्ते बन जाएंगे इनके, और शुरू कर देंगी एक-के-ऊपर-एक ढेले धरना, बड़ी नफासत से। फिर बांधेंगी मेहराबें, खंभों को जोड़ती हुई, फिर बनेगा एक गिरजाघर जैसा शानदार महल – अनेकों कमरों वाला, जिसमें रहेंगी ये ताउम्र, न जाने कितने दशकों तक। यह बड़ा-सा घरौंदा वातानुकूलित तो होता ही है पर साथ ही नमी पर भी नियंत्रण रखा जाता है इसमें। और यह सब होता है उनके जीन्स में अंके रासायनिक खाके के मुताबिक ही, एकदम निशाने पर – बिना टस-से-मस हुए।

यह न समझिए कि जुदा-जुदा जीवों का यह एक घना अंबार जैसा है, जैसा कि दिखता है। नहीं, अपने-आप में एक अदद जीव ही है यह – सोचने-विचारने वाला एक दिमाग, लाखों पैरों पर टिका। इस नई नवेली चीज़ के बारे में हम केवल इतना ही जानते हैं कि यह सारी वास्तुकला और इंजीनियरिंग रासायनिक संकेतों के एक जटिल ढांचे के तहत होती है।

* * *

इस आधुनिक दुनिया का सातवां अचरज है एक इनसानी बच्चा, कोई भी बच्चा। मैं बचपन व अपनी प्रजाति के विकास को लेकर कुतूहल में रहा करता था। मुझे तो बचपन की नाज़ुकी और निरीहपन के इतने लम्बे अरसे पर इतनी सारी ऊर्जा का खर्च होना, जाया ही लगता था। गैरज़िम्मेदाराना और बेफिक्र अलमस्ती के सिवा इसमें मुझे कुछ और नज़र ही नहीं आता था। मैं सोचा करता, आखिर इनसानी ज़िंदगी का छठवां हिस्सा तो यही बचपन जीम लेता है।

के. आर. शर्मा

क्यों नहीं हमारे विकास ने इसकी खैर-खबर ली? अपने बचपन से सीधे एक 'बिल्लिया' छलांग लगाकर हम भी अपनी जवानी में झटके से प्रवेश तो कर सकते थे। जीवन की एक कामकाजी और फलदायक (जैसा कि मैं सोचता था) पायदान पर अपने पांव तो जमा सकते थे! लेकिन मैं भाषा तो भूल ही गया था — भाषा एक अकेली ऐसी इनसानी खासियत जो हमें बाकी सारे जीवों से अलहदा ठहराती है। इसी एक वजह से तो हम सबसे मशहूर सहचारी कीटों से भी बेहतर समाजी जीव ठहराए जाते हैं — परस्पर निर्भरता व जुड़ाव की बिनह पर। मैं भूल गया था। यह भी भूल गया था कि यह काम बच्चे अपने बचपन में ही करते हैं। भाषा के वास्ते ही तो बचपन है।

एक और अलहदा जीव है लेकिन फिर भी इनसानी बच्चे से ताल्लुक रखता हुआ। हालांकि बच्चे जैसा गज़ब का तो नहीं, उम्मीद से भरा तो नहीं, लेकिन कुछ ऐसा कि दिन-रात उसकी फिक्र रहती है। वो है — हम, सामूहिक हम। तरह-तरह की टोलियों में हम। अब तक तो हमने एक दूसरे के प्रति अपनी उपयोगिता को तभी हासिल किया है जब-जब हम अपने छोटे-छोटे समूहों में होते हैं — परिवार, मित्र-मण्डलियां वगैरह वगैरह। उपयोगी होने की चाहत हमारी जीन्स में कहीं गहरे पैठी है लेकिन जैसे ही हमारा यह संग एक बड़े पैमाने पर होता है — मसलन एक आधुनिक राष्ट्र या राज्य के रूप में — तो जैसे हम आत्मघात व मूढ़ता की हर तरह की काबिलियत अंगीकार कर लेते हैं। और यहां हमारा कोई सानी नहीं दिखता, इस सारी प्रकृति में।

वैसे भी हर प्रजातीय हिसाब से हम अभी भी बहुत छोटे हैं, अल्हड़ हैं, किसी भरोसे के लायक नहीं। पिछले कुछेक हज़ार सालों में ही हमने अपनी धरती का हर मुमकिन कोना छान मारा है। विकास के घड़ियाल के मुकाबले हमारी घड़ी ने तो अभी 'टिक्' भी नहीं की। और इस छोटी-सी टिक् में हमने अपनी धरती को हर उस तरफ से लांघ लिया है — जहां-जहां लांघा जा सकता है — अपने सिवा जीवन के हर रूप को रौंदते हुए। और अब तो तलवार हमारे सिर पर भी आ लटकी है। एक प्रजाति की हैसियत से हमें दुनिया की वे सारी चीज़ें मयस्सर हैं जिनसे हम जीने के बारे में कुछ तो सीख सकते हैं। लेकिन हो सकता है वक्त की चादर छोटी पड़ जाए हमें। तो कुछ देर को सही, हां सिर्फ कुछ देर को, हम भी अजूबा हैं अपने-आप में।

* * *

और अब आता है मेरी फेहरिस्त का सबसे ऊपरी छोर — यानी आधुनिक दुनिया का अव्वल नंबर का चमत्कार। इसे नाम दें? लेकिन इसके लिए हमें इस दुनिया को फिर से परिभाषित करना होगा — जैसा कि इस सबसे ज़्यादा 'विज्ञानी' सदी में कई बार हुआ है। 'दुनिया' लफ्ज़ का जो विस्तार हमारे होते हुए हुआ है, गज़ब का है। हम जिसमें रहते थे उस से तो कहीं आगे की यह दुनिया अब कुछ और ही है।

आज तो हम ब्रह्मांड के वासी हैं। विस्मय में हमें डालता, हर पल फैलता

हुआ जुगराफिए का यह एक टुकड़ा – हमारा ब्रह्मांड! स्थानीय सौर मंडल के ग्रह तो अब हमारे उपनगर हैं। आज न सही, कल तो ये बसेंगे हमसे। फिर लगता ह हम अपनी आकाशगंगा को भी नहीं छोड़ेंगे। जहां तक हमारी पहुंच और नज़र है, हमारी अपनी ही धरती सबसे ज़्यादा विचित्र, सबसे ज़्यादा तिलस्मी खगोलीय पिंड नज़र आता है। इसका मुकाबला करता फिलहाल तो कोई पिंड नहीं दिखता।

और यह एक जीवंत ढांचा है – एक विशाल जीव, जो अभी भी बढ़ रहा है, ज़रूरतन अपने को नियंत्रित भी करते हुए, अपनी प्राणवायु खुद बनाते हुए, अपनी एक हरारत बरकरार रखते हुए और हम सहित तमाम अनगिनत जीवित हिस्सों के बीच तालमेल बैठाते हुए। सारे मुकामों में यह सबसे ज़्यादा कुतूहल भरी जगह है और क्या कुछ नहीं सीख सकते हैं हम इससे। हमे जगाए रखने की कुव्वत है इसमें। तमाम जोशीले सवालों से हमें यह कई हज़ार सालों तक उकसाए रख सकती है। बशर्ते हम बहुत ज़्यादा दखलअंदाज़ी न करें, नष्ट न करें इसे। हमारी सबसे बड़ी उम्मीद हमारी कमसिनी में है। अभी कुछ ह। तो वक्त हुआ है हमें अपनी खुद की भाषा में सोचते, सीखते, जवान होते हुए।

हम उन समाजी कीटों की मानिन्द नहीं जो एक ही चीज़ को एक ही ढंग से करते जाएंगे, हमेशा। उनकी जिनेटिक लिखावट ही कुछ ऐसी होती है कि वे वही करते रहेंगे जो करते रहे। लेकिन हमारी लिखावट कुछ अलग है – ऐसा नहीं है कि केवल कुछ करने या न करने का ही विकल्प हो हमारे पास। माहौल को सूंघकर हम एक ही समय में चार चालें चल सकते हैं। जाएं, न जाएं, मुमकिन है, ओफ्फो क्या बला है ज़रा देखें तो . . . । एक से बढ़कर एक अचम्भे हैं हमारे लिए, गरचे हम यूं ही चलते रहे और ज़िंदा रहे। हम वे ढांचे, वे इमारतें बना सकते हैं जो पहले कभी न बनी; हम अब तक असोचे को सोच सकते हैं, हम पहले न सुनी धुन बना सकते हैं।

लेकिन शर्त वही कि हम जान न ले लें अपनी ही; शर्त ये कि प्यार करते रहें अपने को यूं ही; हो अदब ऐसे ही अपने प्रति। मुझे यकीन है हमारी बुनावट में यह मोहब्बत भी बुनी हुई है। इस धरती से अलग, इन आसमानों से दूर, कहीं भी हमारी हद नहीं – हम बढ़े चले जा सकते हैं।

अभी तो हम जवान तक न हुए, पालने में ही हैं। किस्मत रही तो बड़े भी होंगे। लेकिन आज अभी इस मुकाम पर हमें जिस चीज़ की दरकार सबसे ज़्यादा है वह है, बस एक भविष्य।

लुईस थॉमस – पेशे से डॉक्टर। न्यूयार्क में जन्मे और अमेरिका के कई जाने-माने अस्पतालों और विश्वविद्यालयों में शोधकार्य किया और चिकित्सा प्रशासन को संभाला। उनके पेशे से उभरे अनुभवों पर निबंधों के कई संकलन किताबों के रूप में प्रकाशित हुए। उपरोक्त लेख उनकी पुस्तक 'लेट नाइट थॉट्स ऑन लिसनिंग द माहलर्स नाइन्थ सिम्फनी' (1984) से अनुदित है।
मनोहर नोतानी – एकलव्य की विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर सेवा 'स्रोत' से संबद्ध।

जो गौरीशंकर की समझ में न आए....

रश्मि पालीवाल

सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम में सरकार के ढांचे के विभिन्न पहलू अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। सरकार क्या है; कैसे बनती है; कैसे काम करती है आदि मुद्दों पर बच्चों की समझ विकसित करना निस्संदेह ज़रूरी है। पर यह कहना जितना आसान है करना उतना सहज कदापि नहीं।

राज्य सरकार, केन्द्र सरकार, विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका आदि बिन्दुओं पर लिखे पाठ आपने भी कई कक्षाओं की पाठ्य-पुस्तकों में पढ़े होंगे। उनका मूल खाका एक-सा ही होता है। कक्षा आठ के कुछ बच्चों से चर्चा करने पर हमें लगा कि ये पाठ बच्चों की समझ की कई गांठों को छू ही नहीं पाते। बहुत विधिवत ढंग से, संक्षिप्त सटीक जानकारी देने के बावजूद वे पुख्ता अवधारणा बनाने की दिशा में कमज़ोर पड़ जाते हैं। सरकार के ढांचे को बूझने में समझ का सूत्र कहां-कहां उलझ सकता है? चलिए यहां दी गई तीन चर्चाओं से भांपने की कोशिश करते हैं।

मैंने कक्षा-8 के गौरीशंकर के साथ अलग से बैठकर बातचीत की। उसने केन्द्र सरकार का पाठ कक्षा में पढ़ा हुआ था।

– "यह बताओ कोई प्रधानमंत्री कैसे बनता है?"
– "जनता वोट डालेगी।"
– "फिर?"
– "जब दोनों पक्ष बराबर होंगे तो राष्ट्रपति वोट डालेगा। राष्ट्रपति

चुन के उनमें से किसी को भी बना देगा।"
"उदाहरण के लिए, अभी प्रधानमंत्री किस पार्टी का है?"
"कांग्रेस का।"
"क्या नाम है उसका?"
"पी. वी. नरसिंहराव।"
"ठीक है तो एक पक्ष कांग्रेस का है तो दूसरा पक्ष कौन-सा है?"
"जनता पार्टी है।"
"अच्छा, तो प्रधानमंत्री जनता पार्टी का नहीं बना?"
"नहीं।"
"क्यों नहीं बना?"
"क्योंकि वो हार गई।"
"हार गई मतलब?"
"वो वोट से हार गए।"
"पर उनके कुछ लोग तो हैं संसद में। फिर उनमें से क्यों नहीं प्रधानमंत्री बनाया गया?"
"जी उनको राष्ट्रपति ने नहीं चुना।"
"राष्ट्रपति ने किसे चुना?"
"प्रधानमंत्री को।"
"तो कांग्रेस पार्टी से चुन लिया?"
"जी।"
"जनता पार्टी से क्यों नहीं चुना?"
... (चुप्पी)
"अच्छा चलो अपनी किताब में पढ़कर देखो।"

उसने मंत्रिमण्डल के गठन वाला अंश किताब खोलकर पढ़ा।

– "क्या बात बताई है इसमें? अपने-आप बताओ ज़रा।"
– "प्रधानमंत्री जब चाहे किसी को मंत्री बना सकता है। चाहे तो किसी को हटा भी सकता है।"
– "हुं, किसी को भी मंत्री बना सकता है? प्रधानमंत्री चाहे तो मुझे बना सकता है?"
– "बना सकता है।"
– "मतलब कैसे? क्या ऐसा हो सकता है कि कल मेरे पास प्रधानमंत्री की एक चिट्ठी आ जाए – मैं आपको अपना मंत्री बना रहा हूं...।"
– "हां जी। यदि आपका काम अच्छा है तो प्रधानमंत्री आपको मंत्री बना रहने देगा। आपका कार्य गलत है तो हटा देगा।"
– "मुझे कोई चुनाव नहीं लड़ना पड़ेगा मंत्री बनने के लिए?"
– "नहीं जी – क्योंकि प्रधानमंत्री चाहे जिसे रख सकता है। आपका कार्य अच्छा होगा तो आपको उसी पद पर रहने देगा, नहीं तो हटा देगा।"

ता

....

संदर्भ

वार्षिक सदस्यता

एवं

उपहार

रुपए

; लिए), डाकखर्च मुफ्त।

नवाकर भेजें । चेक

हस्ताक्षर

अलग-अलग पार्टी के?"

– "एक ही पार्टी के।"

– "512.... सारे-के-सारे?"

– "जी हां।"

– "अभी कौन-सी पार्टी के संसद सदस्य हैं?"

– "कांग्रेस के।"

– "सारे?"

– "जी हां।"

...ा की पेचीदगियों का खुलासा नहीं कर सकते। हर अवधारणा की पेचीदगियों को खास ध्यान में रखते हुए ठोस उदाहरणों को चुनना होगा और उनके माध्यम से ही पाठों में चर्चा करनी होगी।

सरकार के ढांचे से संबंधित कुछ और विकट पहलू हैं। जैसे लोकसभा व राज्यसभा की भूमिका में फर्क। आगे जो चर्चाएं प्रस्तुत हैं, वे ऐसे ही

चुन के उनमें से किसी को
देगा।"
"उदाहरण के लिए, अभी
प्रधानमंत्री किस पार्टी का है
"कांग्रेस का।"
"क्या नाम है उसका?"
"पी. वी. नरसिंहराव।"
"ठीक है तो एक पक्ष कांग्रेस
तो दूसरा पक्ष कौन-सा है?"
"जनता पार्टी है।"
"अच्छा, तो प्रधानमंत्री जनता
पार्टी का नहीं बना?"
"नहीं।"
"क्यों नहीं बना?"
"क्योंकि वो हार गई।"
"हार गई मतलब?"
"वो वोट से हार गए।"
"पर उनके कुछ लोग तो हैं संर
में। फिर उनमें से क्यों नहीं
प्रधानमंत्री बनाया गया?"
"जी उनको राष्ट्रपति ने नहीं चुना।
"राष्ट्रपति ने किसे चुना?"
"प्रधानमंत्री को।"
"तो कांग्रेस पार्टी से चुन लिया!
"जी।"
"जनता पार्टी से क्यों नहीं चुना
... (चुप्पी)
"अच्छा चलो अपनी किताब में

सदस्यता शुल्क इस पते पर भेजें:

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद - 461 001

कार्य अच्छा होगा तो आपको उसी
पद पर रहने देगा, नहीं तो हटा
देगा।"

संदर्भ वार्षिक सदस्यता

नाम . . . .

पता . . . .

पिन . . . .

सदस्यता शुल्क . . . . **वर्ष के लिए** . . . . **रुपए**

वार्षिक सदस्यता शुल्क 35/- रुपए (6 अंकों के लिए), डाकखर्च मुफ्त। बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर एकलव्य के नाम से बनवाकर भेजें। चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे।

हस्ताक्षर

अलग-अलग पार्टी के?"

– "एक ही पार्टी के।"

– "512.... सारे-के-सारे?"

– "जी हां।"

– "अभी कौन-सी पार्टी के संसद सदस्य हैं?"

– "कांग्रेस के।"

– "सारे?"

– "जी हां।"

अवधारणा की पेचीदगियों का खुलासा नहीं कर सकते। हर अवधारणा की पेचीदगियों को खास ध्यान में रखते हुए ठोस उदाहरणों को चुनना होगा और उनके माध्यम से ही पाठों में चर्चा करनी होगी।

सरकार के ढांचे से संबंधित कुछ और विकट पहलू हैं। जैसे लोकसभा व राज्यसभा की भूमिका में फर्क। आगे जो चर्चाएं प्रस्तुत हैं, वे ऐसे ही

नाम . . . .

पता . . . .

. . . .

. . . .

पिन . . . .

– "अच्छा? बिल्कुल प्रधानमंत्री के ऊपर है? वह चाहे जिसको भी मंत्री बनाए?"
– "हां...।"
– "ऐसा नहीं है कि मुझे संसद सदस्य बनना होगा... तभी मैं मंत्री बनी रह सकती हूं... ऐसा ... है कि नहीं?"
– "यह है तो....पर।"
– "अच्छा यह बताओ कि मंत्री संसद के सदस्य होते हैं या नहीं?"
– "होते हैं...।"
– "और संसद क्या होती है?"
– "यहां कानून बनाए जाते हैं गल्तियों को सुधारा जाता है।"
– "संसद में जो 512 लोग हैं – वे चुनाव जीतकर संसद में पहुंचे हैं। वे सब एक ही पार्टी के होंगे या अलग-अलग पार्टी के?"
– "एक ही पार्टी के।"
– "512.... सारे-के-सारे?"
– "जी हां।"
– "अभी कौन-सी पार्टी के संसद सदस्य हैं?"
– "कांग्रेस के।"
– "सारे?"
– "जी हां।"
– "जनता पार्टी के नहीं हैं?"
– " हैं कुछ ...जो..."
– "अच्छा इन 512 सदस्यों में से प्रधानमंत्री को कैसे चुना राष्ट्रपति ने?"
– "512 ने वोट डाले..."

पार्टीगत राजनीति और संसदीय प्रणाली का संबंध गौरीशंकर को उलझाए हुए है। इसी तरह प्रधानमंत्री की मंत्रियों को चुनने की स्वतंत्रता को संसद के सदस्य होने की बाध्यता के साथ गौरीशंकर संतुलित नहीं कर पा रहा है। जब हम कहते हैं कि कोई अवधारणा पेचीदगी लिए है – तो उसका मतलब ऐसा ही कुछ निकलता है जैसा यहां आए उदाहरणों से स्पष्ट हो रहा है। सीधी सटीक जानकारी देने के उद्देश्य से लिखे पाठ किसी अवधारणा की पेचीदगियों का खुलासा नहीं कर सकते। हर अवधारणा की पेचीदगियों को खास ध्यान में रखते हुए ठोस उदाहरणों को चुनना होगा और उनके माध्यम से ही पाठों में चर्चा करनी होगी।

सरकार के ढांचे से संबंधित कुछ और विकट पहलू हैं। जैसे लोकसभा व राज्यसभा की भूमिका में फर्क। आगे जो चर्चाएं प्रस्तुत हैं, वे ऐसे ही

पहलुओं को सामने लाती हैं।

मैंने गौरीशंकर के साथ अलग से बैठकर जैसी बातचीत की थी, वैसी ही राजेन्द्र और सरला के साथ भी की।

सरकार के बारे में चर्चा करने में राजेन्द्र गौरीशंकर से कहीं ज़्यादा सहज और आत्मविश्वासी है। मैंने उसके साथ भी पहले जैसे ही बातचीत शुरू की।

– "कोई प्रधानमंत्री कैसे बनता है?"

– "राष्ट्रपति नियुक्त करता है।"

– "किसी को भी?"

– "नहीं, जो लोकसभा के सदस्य होते हैं उनमें से।"

– "लोकसभा में तो 545 सदस्य होते हैं। इनमें से किसी को भी वह प्रधानमंत्री बना सकता है?"

– "जिसके अधिक वोट होंगे उसको।"

– "मतलब? किससे अधिक वोट होंगे?"

– "राष्ट्रपति सदस्यों के वोट लेगा। लोकसभा व राज्यसभा के वोट लेगा...कि आप किसको प्रधानमंत्री बनाते हैं? जिसको वो चुनेंगे उसे ही नियुक्त कर देगा।"

– "अच्छा। फिर?"

– "फिर प्रधानमंत्री, मंत्री चुनेगा। पर ऐसे लोगों को जिसे लोकसभा में बहुमत का विश्वास प्राप्त हो।"

बहुमत का विश्वास यह बात संपूर्ण पार्टी के लिए लागू होती है। उसके हरेक सांसद के लिए अलग-अलग नहीं। यह व्यक्तिगत मसला नहीं; दलगत मसला है। पर क्यों? जिस भी व्यक्ति को सबसे अधिक सदस्य पसंद करें उसे मंत्री बनना ही चाहिए। नहीं भाई... सरकार बनाना दलीय बहुमत का मामला है। व्यक्तिगत लोकप्रियता का नहीं। यह एक और तरह की पेचीदगी है।

और आखिर में, सरला से हुई बातचीत पर गौर फरमाइए।

– "सरकार में कौन होता है? बताओगी?'

– .... चुप्पी

– "अच्छा मुख्यमंत्री जानती हो? मुख्यमंत्री क्या होता है?"

– .... चुप्पी– और परेशानी भरी कसमसाहट।

– "चलो पाठ पढ़कर देखते हैं क्या-क्या लिखा है।"

राज्यसभा-लोकसभा वाला अंश सरला पढ़ लेती है।

– "हां, तो राज्यसभा क्या हुई? क्या बताया है यहां?"

– "यह चुनी जाती है।"

– "ठीक। किसके द्वारा चुनी जाती है?"

– "लोगों द्वारा..."

– "अच्छा। क्या अपने गांव में वोट पड़ते हैं राज्यसभा के लिए?"

– "जी हां।"

– "और, लोकसभा के लिए भी?"

– "अच्छा, यह बताओ, ये लोकसभा और राज्यसभा एक ही चीज़ है या अलग-अलग है?"

– "एक ही चीज़ है।"

– "अच्छा। चलो अब पाठ में से आगे पढ़कर देखते हैं।"

सरला केन्द्र व प्रान्त सरकार के बीच काम के विभाजन से संबंधित तीन सूचियों के बारे में लिखी पंक्तियां पढ़ती है।

– "प्रान्त सरकार किन चीज़ों पर कानून बना सकती है, सरला?"

– "प्रान्त सरकार है कहां? इसकी राजधानी कहां है?"

– ...चुप्पी

– "अच्छा कौन-सी सरकार बड़ी है; केन्द्र की या प्रान्त की?"

"केन्द्र सरकार।"

"वाह। बढ़िया। क्यों बड़ी है?"

"क्योंकि केन्द्रों की सरकार है।"

"केन्द्र कहां है? यानी केन्द्र सरकार कहां काम करती है?"

......चुप्पी......

"दिल्ली में कौन-सी सरकार बैठती है?"

"प्रान्त सरकार।"

"अच्छा अभी अपने प्रधानमंत्री कौन हैं, उनका नाम जानती हो?"

"पी.वी. नरसिंहराव।"

"हां। वे कैसे बन गए प्रधानमंत्री?"

"लोकसभा और राज्यसभा के द्वारा बन गए।"

"अच्छा। समझाओ तो कैसे बने वे प्रधानमंत्री?"

"कोई वोट करेगा... कोई बोलेगा कि ये प्रधानमंत्री बन जाए... कोई बोलेगा कि न बने। आधे से ज़्यादा बोलेंगे कि ये बन सकते हैं तो बनेंगे।"

"हां। अच्छा बताया तुमने। अच्छा लोकसभा में कौन लोग होते हैं? क्या सभी लोग एक पार्टी के होते हैं।"

"जी हां।"

– "अभी किस पार्टी के प्रधानमंत्री हैं?"

– "जनता पार्टी के।"

– "नहीं यह तो ठीक नहीं है। पी. वी. नरसिंहराव तो कांग्रेस पार्टी के हैं या सिर्फ जनता पार्टी के या दोनों के?"

– "सिर्फ जनता पार्टी के हैं।"

गौरीशंकर और राजेन्द्र की तुलना में सरला को सरकार के पूरे मुद्दे में ही काफी ज़्यादा अरुचि है। ये तीनों बच्चे किसी कक्षा में मौजूद विभिन्नताओं का एक नज़ारा प्रस्तुत करते हैं। संभव है यह लेख पढ़ते हुए आपके मन में आपके शिक्षण अनुभव भी ताज़े हो उठे हों। क्या कुछ सुझाव भी मन में उठते हैं? पाठ्यक्रम पर, पाठ्य-पुस्तकों पर या शिक्षण -विधि पर? अपनी प्रतिक्रियाएं भेजिए ताकि शिक्षण की वास्तविकताओं से सामना करते हुए हम विकल्पों को खोज सकें।

रश्मि पालीवाल – एकलव्य के सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध

एक विधायक की कहानी

कौशलपुर एक काल्पनिक जगह है। इस कहानी में पार्टी और लोग भी काल्पनिक हैं। लेकिन विधायक चुनने का तरीका, नियम तय करने के तरीके, जो इस कहानी में बताए गए हैं, वे सब सही हैं।

कौशलपुर क्षेत्र में विधानसभा चुनाव होने वाले हैं। पाच पार्टियां चुनाव लड़ रही हैं। उन्होंने अपने चुनाव प्रत्याशी या उम्मीदवार तय कर लिए हैं। सबसे ताकतवर पार्टियां हैं मध्य भारत दल और महाकौशल संघ। मध्य भारत दल से चुनाव लड़ रहे हैं, विलासभाई और महाकौशल संघ से रामप्रसादजी। कुछ निर्दलीय उम्मीदवार भी हैं, जो किसी पार्टी के सदस्य नहीं हैं। कौशलपुर क्षेत्र से चुनाव के लिए कुल 8 उम्मीदवार या प्रत्याशी हैं – 5 पार्टियों के और तीन निर्दलीय।

प्रचार

चुनाव 25 सितम्बर को होने वाले हैं। 15-20 दिन पहले ही चुनाव-प्रचार शुरू हो गया – लाउड-स्पीकर, जीप, तांगे, आमसभाएं। हर पार्टी के उम्मीदवार आश्वासन देते हैं। कोई कहता है, "हम महंगाई कम करेंगे।" तो कोई कहता है, "हम ज़मीन दिलवाएंगे।" और तीसरा कहता है, "हम मज़दूरी बढ़वाएंगे।" उम्मीदवार दूसरी पार्टी के सदस्यों की आलोचना भी करते हैं। 24 तारीख तक

यह शोरगुल रहा और फिर सब शांत हो गया।

सोचो कि यह नियम क्यों है कि चुनाव से एक दिन पहले प्रचार-प्रसार बंद होना चाहिए।

कौशलपुर में वोट डले

25 तारीख को सुबह वोट डलना शुरू हुए और शाम तक डलते रहे। चुनाव केन्द्रों के सामने लोगों की लम्बी कतारें थीं। बड़े-बूढ़े, औरतें, आदमी सभी वहां थे। एक व्यक्ति दरवाज़े पर बैठा था। उसके पास लम्बी सूचियां थीं। वोट देने वाले उसके पास पहले जाते। जिसका नाम उस सूची में न होता उसे वह लौटा देता। सूची में जिसका नाम होता उसके नाखून पर एक खास स्याही से निशान लगाया जाता। वह हस्ताक्षर करके मतपत्र पर अपनी पसंद के अनुसार उम्मीदवार के चिह्न के सामने मुहर लगाता। फिर मतपत्र को मोड़कर मतपेटी में डाल देता।

बीच में एक व्यक्ति से उस अधिकारी की खूब लड़ाई हुई। अधिकारी कह रहा था, "तुम तो अपना वोट डाल चुके हो, फिर से क्यों आए हो?" वोट डालने वाला बार-बार अपने नाखून दिखाता, "जब मेरे नाखून पर निशान ही नहीं तो आप मुझे रोक कैसे सकते हैं? आपने मेरे नाम को सूची में गलती से काटा होगा या कोई फर्ज़ी वोट डाल गया होगा।" अंत में अधिकारी ने उस से वोट एक लिफाफे में रखकर सीलबंद करके देने को कहा। वोट का लिफाफा अधिकारी ने अपने ही पास रख लिया।

सीलबंद लिफाफे वाले वोटों का क्या होता है – गुरुजी से चर्चा करो।

कौशलपुर में वोट डल ही रहे थे कि पास के रामपुर विधान सभा क्षेत्र से खबर आई कि कई सारे लोगों ने लाठी लेकर 2 केन्द्रों पर धावा बोला। अधिकारियों को पीटा गया और मतपेटी के ताले खुलवाकर उसमें फर्ज़ी वोट डाले गए। अधिकारियों से फिर ज़बरदस्ती वोट पेटियां सील करवाई गईं। जो पुलिस वहां थी उसे भी पीट दिया गया।

इस घटना की जांच की गई। इन दो केन्द्रों पर कड़ी सुरक्षा में फिर से चुनाव करवाने के आदेश दिए गए।

अगले दिन कौशलपुर क्षेत्र के वोटों की गिनती शुरू हुई। शाम तक चुनाव के

परिणाम आने लगे। कौशलपुर की सभी वोट पेटियों की जब गिनती खत्म हुई तो पता चला कि रामप्रसाद जी को 42,803 वोट मिले और विलासभाई को 28,156,बाकी 6 प्रत्याशियों को पांच हज़ार से भी कम वोट मिले।
बताओ कौशलपुर का विधायक कौन बना? वह किस पार्टी का था?

मंत्रिमंडल किसका बना

जब हर विधानसभा क्षेत्र के चुनाव परिणाम घोषित हो गए तो पता चला कि कुल 320 विधानसभा क्षेत्रों में से 192 क्षेत्रों में विलासभाई की पार्टी यानी मध्य भारत दल के प्रत्याशी जीते हैं, 92 महाकौशल संघ के और बाकी 35 विधायक अन्य पार्टियों के हैं, या निर्दलीय हैं। कुल 319 सदस्य विधानसभा में पहुंचे क्योंकि एक क्षेत्र में चुनाव तो रद्द हो गया था।

बताओ मंत्रिमंडल और मुख्यमंत्री किस पार्टी के बने?

हालांकि रामप्रसाद जी कौशलपुर क्षेत्र से विजयी हुए, उनकी पार्टी का मंत्रिमंडल नहीं बना। वे विपक्षी दल के हो गए। एक विधानसभा क्षेत्र से चुनाव रद्द कराया गया था, वह 3 महीने बाद फिर से हुआ।

5 सालों में विधानसभा की कई बैठकें हुई। इन बैठकों में राज्य से संबंधित कई बातों पर चर्चा और बहस होती और कई मसले तय किए जाते। जैसे किसी चीज़ पर कितना बिक्रीकर लगेगा? माचिस पर अधिक या तेल पर? खेती की ज़मीन पर भी कर लगेगा या नहीं? पंचायतें किस प्रकार से बनाई जाएंगी? और ऐसे ही कई मसले।

इन बैठकों में कई विधायक सरकार से प्रश्न पूछते और संबंधित मंत्री जवाब देते। कोई पूछता "महंगाई बहुत बढ़ रही है, उसे रोकने के लिए आप क्या कर रहे हैं?" तो वित्त मंत्री को जवाब देना पड़ता। यदि पूछा जाता "प्रदेश में कितनी प्राथमिक शालाओं की छतें नहीं हैं? आप इसके बारे में क्या कर रहे हैं?" तो शिक्षामंत्री उत्तर देते। कुछ विधायक जवाबों से संतुष्ट हो जाते हैं और कुछ संतुष्ट नहीं होते।

सोचो, मंत्री विधायकों से ऐसे सवाल क्यों नहीं पूछ रहे हैं?

न्यूनतम मज़दूरी का कानून बनाः

एक दिन श्रममंत्री ने विधानसभा में न्यूनतम मज़दूरी का बिल पेश किया। पहले सब विधायकों को बिल की प्रतियां बांटी गईं। श्रममंत्री ने बिल को संक्षेप में समझाते हुए कहा, "पिछले कुछ सालों में उत्पादन काफी बढ़ा है। महंगाई भी बढ़ी है। लेकिन मज़दूरों की मज़दूरी इतनी नहीं बढ़ पाई है जितना कि और लोगों की आमदनी बढ़ी है। कई मज़दूर संगठनों ने अपने मालिकों के साथ ये मसले भी उठाए हैं। हड़तालें भी हुई हैं। हड़तालों से उत्पादन पर बुरा असर पड़ा है। मज़दूरों की मांगें भी कुछ हद तक जायज़ हैं। सरकार को जनहित में सोचना है। इन सब चीज़ों को ध्यान में रखते हुए हम यह

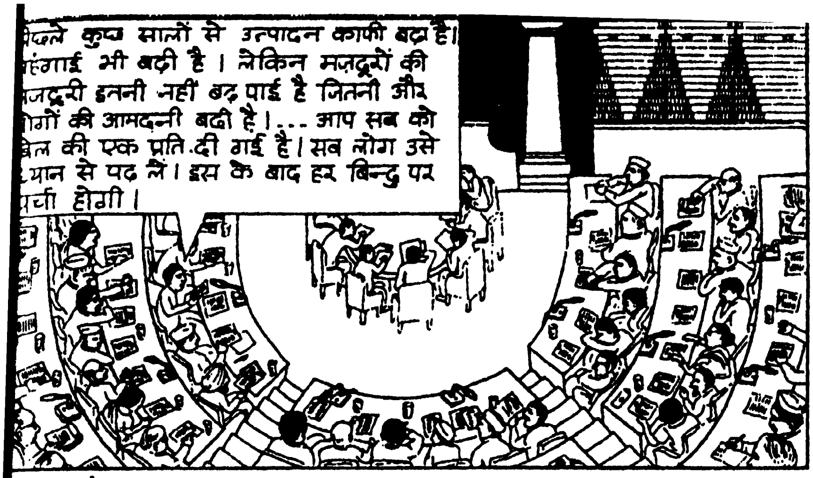

बिल पेश कर रहे हैं जिसमें उद्योगों में काम करने वाले मज़-दूरों की न्यूनतम मज़दूरी 37 रुपए से बढ़ाकर 45 रुपए प्रतिदिन की जा रही है और खेतीहर मज़-दूरों की 28 रुपए से 35 रुपए। आप सबको बिल की एक-एक प्रति दी गई है। अब लोग उसे ध्यान से पढ़ लें। इसके बाद हर बिन्दु पर चर्चा होगी।”

चित्र में श्रममंत्री को पहचानो।

सब लोगों के सामने मेज़ पर रखे हुए कागज़ क्या हैं? मेज़ पर रखे कागज़ों के अलावा और क्या-क्या रखा है? इनकी क्यों ज़रूरत पड़ती होगी?

सब विधायकों ने बिल पढ़ा फिर बहस शुरू हुई। कोई बिल के पक्ष में बोलता तो कोई उसके विरुद्ध। महाकौशल संघ के रामप्रसादजी अधिकांश मामलों में कुछ न बोलते थे। पर आज वे खड़े हो गए।

एक और विधायक श्री आकाशमल जी ने कहा:

चर्चा और बहस खूब हुई। जब मत पूछे गए कि क्या इस बिल को पास कर देना चाहिए तो उपस्थित 273 लोगों में

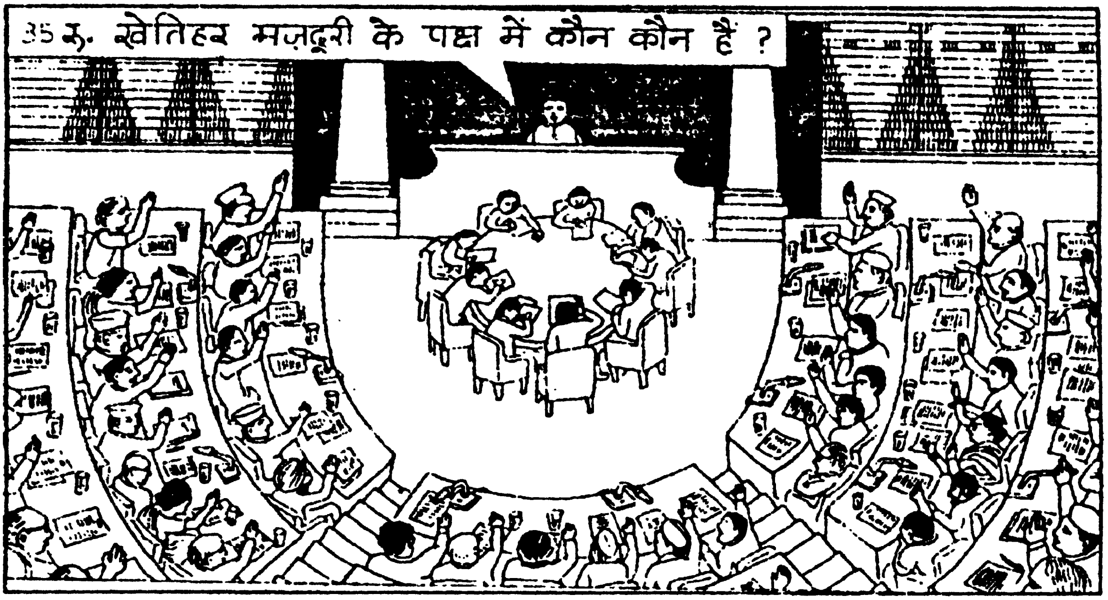

से 200 के हाथ उठ गए। बिल को राज्यपाल के हस्ताक्षर के लिए पेश किया गया। राज्यपाल ने हस्ताक्षर कर दिए। इस तरह से विधानसभा में न्यूनतम मज़दूरी का कानून बना।

क्या तुम्हें लगता है कि यह कानून मज़दूरों और मालिकों की राय के अनुसार बना है? विधानसभा की चर्चा में उनकी राय कैसे पहुंची।

कानून कैसे लागू होगा:

गज़ट नाम की किताब में छपकर यह कानून ज़िलाधीश जैसे सरकारी कर्मचारियों के पास पहुंचा। अब यह देखना उनकी ज़िम्मेदारी हो गई कि हर मज़दूर को उतनी मज़दूरी मिलती है जितनी विधानसभा में तय की गई है। यदि किसी जगह कम मज़दूरी मिलती तो वहां के मज़दूर उस क्षेत्र के विधायक से बात करते। उस ज़िले के ज़िलाधीश को भी ज्ञापन देते। विधायक विधान सभा में सवाल पूछते। ज़िलाधीश अपनी तरफ से जांच करवाता। इस तरह न्यूनतम मज़दूरी का कानून लागू करने का दबाव बनता।

यह कहानी एकलव्य के सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम द्वारा तैयार कक्षा -7 की किताब से ली गई है।

माध्यमिक शाला के स्तर पर बच्चों द्वारा 'सरकार' की अवधारणा को समझने में आने वाली दिक्कतों को देखते हुए एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में इसे एक कहानी के माध्यम से समझाने का प्रयास किया गया। यह भी कोशिश की गई कि बच्चों के सामने सरकार का ढांचा उसकी तमाम पेचीदगियों एवं जटिलताओं के साथ प्रस्तुत हो।

कक्षा - 7 में रखे गए इस अध्याय से बच्चों की समझ पर कितना असर पड़ा है यह अभी भी स्पष्ट नहीं है। इसके बारे में और खोजबीन, जांच-पड़ताल की ज़रूरत है।

शिक्षक प्रशिक्षण और कहानी

यतीश कानूनगो

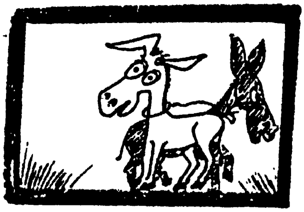

प्राथमिक शिक्षण में बच्चों को सिखाने का आधार कहानियां भी हो सकती हैं। लेकिन ज़रूरी है शिक्षक क्रियाशील हो, कहानी कहने में निपुण हो वरना यह प्रक्रिया भी नीरस और उबाऊ बन जाएगी।

प्राथमिक स्तर पर कक्षा 1,2,3 में बच्चों को बहुत-सी बातें कहानियों का इस्तेमाल करके सिखाई जा सकती हैं। यह रोचक और मनोरंजक तरीका है जिसमें बच्चे बिना किसी मानसिक दबाव के सीखते हैं। शिक्षक का कहानी कहने में निपुण होना अनिवार्य है अन्यथा वह इस रोचक विधा को भी नीरस और उबाऊ बना देगा। यही नहीं शिक्षक को नई-नई कहानियां बनाना और बनवाना भी आना चाहिए।

देवास डाइट में प्राथमिक शाला शिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण में कहानी विधा पर मैंने चार सत्र करवाए। इनकी सफलता इसी तथ्य से जानी जा सकती है कि लगातार चार सत्रों में (आठ घंटे) शिक्षकों में क्रियाशीलता और सहयोगी माहौल बना रहा। मैंने जो करवाया उसके कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत करता हूं।

चित्र कार्ड और कहानी

शिक्षकों को चार-चार के समूहों में बांटकर हर समूह को चित्र-कार्डों का एक-एक सेट दिया। इन कार्डों को उचित क्रम में रखकर एक कहानी लिखनी थी। कुछ कार्ड सेट स्वयं कहानी कहते थे अर्थात इनसे कहानी बनाने में कल्पना की आवश्यकता कम थी। जैसे गधे के चित्र

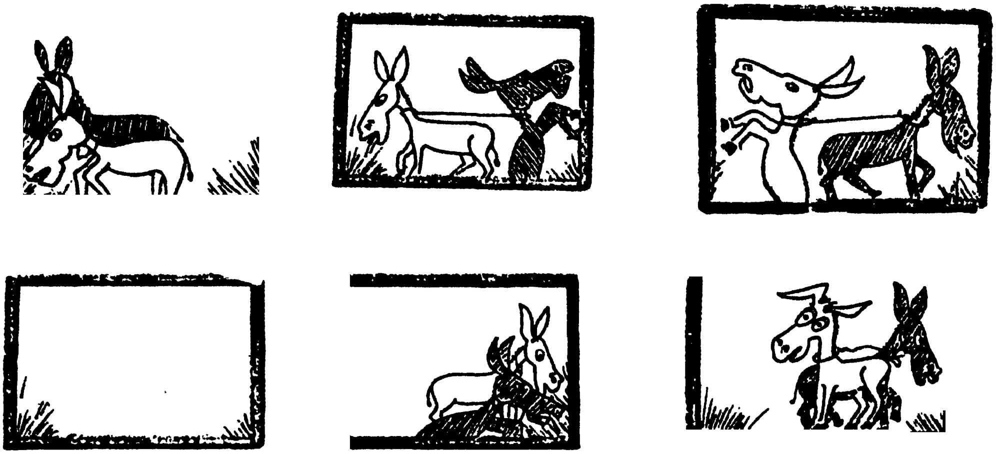

वाला सेट।

कुछ चित्र-कार्ड सेट ऐसे थे जिनसे कल्पना का सहारा लेकर ही कहानी बनाई जा सकती थी अर्थात अधिक सृजनात्मकता की आवश्यकता थी। जैसे समाचार पत्र से काटे गए मिकी-माऊस चित्रों का यह सेट—

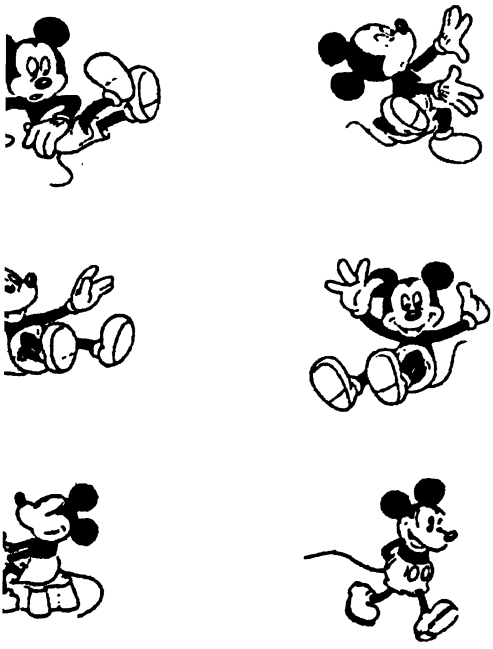

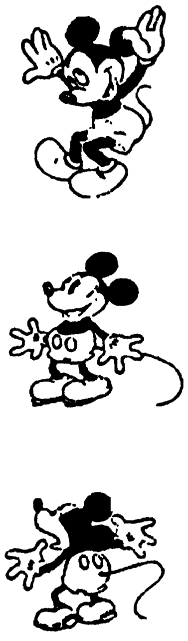

शिक्षकों के प्रत्येक समूह को अपनी कहानी बनाकर कागज़ पर लिखनी थी। कहानी को शीर्षक भी देना था। इस काम के लिए प्रत्येक समूह को 10 से 15 मिनिट का समय दिया गया।

जब सबने कहानी लिख ली तो समूह के अनुसार शिक्षकों को कहानी पढ़ने के लिए बुलाया गया। जिन चित्रों के आधार पर उन्होंने यह कहानी बनाई थी उन्हें भी बोर्ड पर प्रदर्शित किया गया।

जब एक समूह अपनी कहानी प्रस्तुत कर चुकता तो बाकी समूहों के शिक्षक इस प्रस्तुतिकरण की समीक्षा करते। जब सभी समूह अपनी-अपनी

कहानियां सुना चुके तो कहानियों पर चर्चा की गई और सबसे अच्छी कहानी चुनने का प्रयास किया गया। शिक्षकों से चर्चा इन बिन्दुओं पर हुई:

1. चित्र कार्डों के माध्यम से नई कहानी बनाना क्यों आसान हो गया?
2. कल्पना और सृजनात्मकता सबसे अधिक किस टोली की कहानी में देखी गई और क्यों?
3. किस कक्षा के बच्चों से इस प्रकार कहानी बनवाना संभव है?
4. बच्चे कहानी कह सकें, इसके लिए क्या करें? क्या यह बेहतर होगा कि चित्र ऐसे लें जो स्वयं कहानी बता दें।

एक महत्वपूर्ण बात जो कहानियों की समीक्षा में सामने आई वह यह थी कि ज़रूरी नहीं कि जो कहानी सबको सबसे अच्छी लगे उसमें वास्तविकता हो या वह शिक्षाप्रद हो ही। अगर कहानी शिक्षाप्रद है तो भी उसके अंत में यह न बताया जाए कि उससे मिलने वाली शिक्षा क्या थी। तो फिर अच्छी कहानी में क्या गुण थे?

1. हावभाव के साथ सुनाई गई थी।
2. जानवरों की बोली का उपयोग किया गया था।
3. शब्दों या वाक्यों की पुनरावृत्ति की गई थी।
4. कहानी का कथ्य रुचिपूर्ण था।

खुद के चित्र खुद की कहानियां

शिक्षकों के प्रत्येक समूह को रंगीन पेनों का एक सेट और हर शिक्षक को आधा-आधा सफेद कागज़ दिया गया। सभी को अपनी इच्छा के अनुसार कागज़ पर एक चित्र बनाना था।

दस मिनट बाद सभी चित्रों को इकट्ठा कर लिया गया।

अब इनमें से मिले-जुले चार-चार चित्रों को एक बड़े कागज़ पर किसी भी क्रम से चिपका दिया। इस तरह चित्रों के कई सेट तैयार कर लिए गए।

अब शिक्षकों के प्रत्येक समूह को एक-एक चित्र समूह दे दिया गया। प्रत्येक टोली को यह करना था:

1. प्राप्त चित्र समूह को अपनी इच्छानुसार क्रम देकर (जो चित्र के नीचे लिख दें) एक कहानी का निर्माण।
2. अपनी कहानी एक कागज़ पर बड़े पठनीय अक्षरों में लिखना। फिर, प्रत्येक टोली ने अपनी बनाई कहानी अपने चित्रों के साथ प्रस्तुत की। सभी कहानियों की समीक्षा की गई।

बस एक प्रयोग

उपरोक्त गतिविधियां शिक्षक प्रशिक्षण के आदर्श मॉडयूल हैं – यह दावा मैं नहीं करता, बस एक प्रयोग है। इसका महत्व यही है कि शुरू में जब मैंने शिक्षकों से कक्षा-2 के बच्चों के लिए कहानियां लिखने को कहा था तो सभी कहानियां सुनी-सुनाई तथा उपदेशात्मक थीं।

जबकि इस गतिविधि के बाद जो कहानियां मिलीं उनमें नयापन था। साथ ही इन कहानियों को देखकर शिक्षकों को अपनी सृजनात्मकता का भी अहसास हुआ।

यतीश कानूनगो – डाइट देवास में व्याख्याता।

* * *

बिजली और आवेश

जब हम बिजली के गिरने या बहने की बात करते हैं तो मन में यह विचार उभरता है कि – हो न हो जिस तरह पानी के बहने से हमारा तात्पर्य पानी के कणों का बहना है, उसी तरह बिजली के कण भी होते होंगे। यह बात थोड़ी सही है, और थोड़ी गलत। आइए देखें कैसे।

● **अजय शर्मा**

जनाब बड़ी अजीब शै है ये बिजली। आसमान से गिरे तो कहर बरपा दे, और तारों में बहे तो बन जाए ढेर सारी सुख-सुविधाओं का सवाब। बस समझ लीजिए पानी की ही तरह है इसकी यह फितरत। हिसाब से मिले तो सुभान अल्लाह, और बेहिसाब मिले तो हाय अल्लाह। वैसे समानताएं यहीं खत्म

नहीं होतीं। मसलन जब हम बिजली के गिरने या बहने की बात करते हैं तो मन में यह विचार उभरता है कि – हो न हो, जिस तरह पानी के बहने से हमारा तात्पर्य पानी के कणों का बहना है, उसी तरह बिजली के कण भी होते होंगे जो आकाश से वज्र के रूप में गिरते हैं और तारों में विद्युत बनकर बहते हैं!

यह बात थोड़ी सही है, और थोड़ी गलत। गलत इसलिए कि जिस तरह पानी के कण (H_2O अणु) होते हैं, उस तरह बिजली के कोई कण नहीं होते। हां, इतना ज़रूर है कि एक खास तरह के कणों के प्रवाह को ही बिजली या विद्युत का बहना कहा जाता है। ये वो कण हैं जिनमें एक विशेष गुणधर्म होता है – आवेश। महत्व की दृष्टि से देखा जाए तो सचमुच कमाल का है यह गुणधर्म। बस समझ लीजिए इतना महत्वपूर्ण कि आवेशित कणों के बगैर सृष्टि की कल्पना करना शायद वैज्ञानिक गल्प कथाओं के भी परे होगा। अब आप सोचेंगे कि भई ऐसा क्यों?

दरअसल, बात ऐसी है कि पूरे ब्रह्मांड में पदार्थ एक दूसरे से मात्र चार (जी हां, सिर्फ चार) किस्म के मूलभूत बलों के माध्यम से ही परस्पर क्रिया करता है। ये हैं – गुरुत्व बल, विद्युत बल और दो किस्म के नाभिकीय बल – जिन्हें 'स्ट्रांग' और 'वीक' इंटरएक्शन भी कहते हैं। आवेश उनमें से एक बल, विद्युत बल को जन्म देता है। तो आखिर हुआ न आवेश एक 'स्पेशल' गुणधर्म? अब चूंकि विद्युत प्रक्रियाओं में आवेशित कण एक दूसरे से परस्पर क्रिया इसी बल द्वारा करते हैं, क्यों न हम अभी थोड़ी-सी चर्चा विद्युत बल की ही कर लें।

विद्युत बल की विशेषताओं पर जब हम नज़र डालते हैं, तो सबसे पहले दो खास बातें उभरकर आती हैं। पहली, यह एक अच्छा-खासा शक्तिशाली बल है। मसलन, आप इसे ज़रा भी गप्प नहीं मानिएगा अगर मैं कहूं कि यह बल गुरुत्व बल से सिर्फ 10,00,00,00,00,00, 00,00,00,00,00,00,00,00,00,00, 00,00,00,00,000 (10^{42}) गुना ज़्यादा शक्तिशाली है! यह बल समान रूप से आवेशित कणों या पिंडों के बीच, एक विकर्षण बल के रूप में मौजूद रहता है; और असमान रूप से आवेशित कणों के बीच एक आकर्षण बल की शक्ल में। अब आप पूछेंगे कि कणों के समान या असमान रूप से आवेशित होने का मतलब?

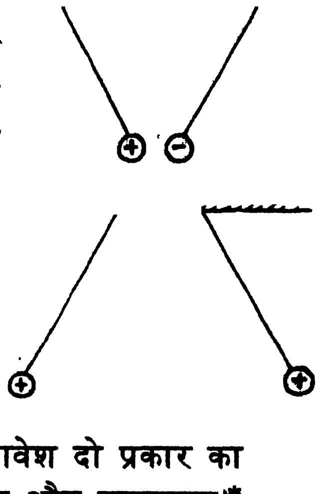

दरअसल बात यह है कि विद्युत आवेश दो प्रकार का होता है – धनात्मक और ऋणात्मक।* दो धनात्मक (या दो ऋणात्मक) रूप से आवेशित पिंडों के बीच विद्युत विकर्षण

---

* विद्युत आवेश की किस्मों के नाम 'धनात्मक' या 'ऋणात्मक' रखने के पीछे कोई खास कारण नहीं है। बस बेंजामिन फ्रेंकलिन को यही नाम पसंद आए। तब से अब तक किसी को ऐसा कोई कारण नहीं दिखा कि नाम बदलना ज़रूरी लगा हो।

होगा पर एक धनात्मक तथा एक ऋणात्मक पिंड के बीच विद्युत आकर्षण।

आकर्षण - विकर्षण

यहां पर सवाल यह उठता है कि किसी आवेशित वस्तु में आखिर ऐसी क्या विशेषता होती है जो उसके आवेश का सबब बन जाती है। इस सवाल को समझने के लिए आइए किसी भी पदार्थ की सूक्ष्म संरचना पर गौर करते हैं। मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि प्रकृति में हरेक पदार्थ धनात्मक रूप से आवेशित प्रोटॉनों और ऋणात्मक आवेश धारण किए इलेक्ट्रॉनों के 'मिश्रण' से निर्मित है। ये कण एक-दूसरे को विद्युत बल के माध्यम से निरंतर आकर्षित या विकर्षित करते रहते हैं। हम लोगों के शरीर भी अनगिनत प्रोटॉनों और इलेक्ट्रॉनों से बने हुए हैं। परंतु सभी कणों के बीच विद्युत बलों का संतुलन इतना सही और सटीक है कि अगर आप किसी के बगल में खड़े हैं तो तनिक भी आकर्षण या विकर्षण महसूस नहीं करेंगे। (कम-से-कम विद्युतजनित तो नहीं!) यानी उदासीन वस्तुओं में मौजूद इलेक्ट्रॉनों या प्रोटॉनों द्वारा लगाया जाने वाला कुल विद्युत बल शून्य ही होगा।

पर मज़े की बात यह है कि सभी पिंडों में यह बल हमेशा संतुलित नहीं रहता। प्राकृतिक कारणों से या हमारे हस्तक्षेप द्वारा किसी वस्तु में यह संतुलन बिगड़ सकता है। संतुलन बिगड़ने के दो कारण हो सकते हैं। प्रथम, उस वस्तु में धनात्मक प्रोटॉनों की कुल संख्या, ऋणात्मक इलेक्ट्रॉनों की कुल संख्या से कम या ज़्यादा हो जाए। दूसरा, प्रोटॉनों और इलेक्ट्रॉनों की संख्या बराबर तो हो पर वस्तु में उनका वितरण असमान हो। इन परिस्थितियों में किन्हीं भी ऐसे दो पिंडों के बीच विद्युत बल लग रहा होगा, जो प्रयोगों से अनुभव किया जा सकता है।

यानी हम कह सकते हैं कि किसी वस्तु में आवेश उसके प्रोटॉनों और इलेक्ट्रॉनों के असंतुलन के कारण ही पैदा होता है। प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन का आवेश बराबर किन्तु विपरीत प्रकृति का है – प्रोटॉन का धनात्मक और इलेक्ट्रॉन का ऋणात्मक। अब अगर किसी वस्तु में (या उसके किसी हिस्से में) इलेक्ट्रॉनों की संख्या प्रोटॉनों की संख्या से ज़्यादा है तो उस वस्तु को (या उस हिस्से को) ऋणात्मक रूप से आवेशित कहेंगे। और यदि इलेक्ट्रॉनों की संख्या प्रोटॉनों से कम है तो उस वस्तु का (या उस हिस्से का) आवेश धनात्मक होगा।

इस संदर्भ में एक बात यह भी है कि अगर हम क्वार्क* नाम के कणों को एक अपवाद के रूप में मान लें तो किसी भी वस्तु में न तो एक इलेक्ट्रॉन से कम ऋणात्मक आवेश हो सकता है, और न ही एक प्रोटॉन से कम धनात्मक आवेश। यानी ये दोनों कण आवेश की सबसे

* क्वार्क: अब ऐसा माना जाने लगा है कि प्रकृति के कई मूलभूत कण जैसे प्रोटॉन और न्यूट्रॉन – और भी छोटे आवेशित कणों से निर्मित हैं। इन सूक्ष्मतम कणों को क्वार्क कहते हैं। इनके आवेश का मान इलेक्ट्रॉन के आवेश के मान से 1/3 या 2/3 माना जाता है।

छोटी इकाइयां कहे जा सकते हैं।

चलिए हमने यह तो समझ लिया कि किसी वस्तु के आवेशित होने से हमारा तात्पर्य क्या है। पर बात अभी भी अधूरी ही है। अभी यह जानना बाकी है कि कोई वस्तु आवेशित कैसे हो जाती है। किसी पदार्थ के आवेशित होने की प्रक्रिया को आवेशन कहते हैं। तीन प्रकार से हो सकती है यह प्रक्रिया:

1. घर्षण द्वारा आवेशन

दो चीज़ों को आपस में रगड़ने से (यानी घर्षण से) उत्पन्न विद्युत प्रभावों पर आपकी नज़र कभी-न-कभी गई ही होगी। मसलन, जब हम सूखे बालों को प्लास्टिक के कंघे से संवारते हैं तो अक्सर चट-चट की आवाज़ सुनाई देती है और बाल कंघे की ओर आकर्षित होने लगते हैं। और रात को स्वेटर उतारते वक्त ऐसी ही आवाज़ सुनने और इक्के-दुक्के स्पार्क उड़ते देखने का अनुभव भी आपको हुआ ही होगा। ये दोनों घर्षण द्वारा आवेशन के उदाहरण हैं।

इस प्रक्रिया में इलेक्ट्रॉन, घर्षण के कारण, एक वस्तु से दूसरी वस्तु में पहुंच जाते हैं। फलस्वरूप दोनों वस्तुओं में इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन का संतुलन बिगड़ जाता है। यानी जिस पदार्थ से इलेक्ट्रॉन निकलते हैं, उसमें इलेक्ट्रॉन की संख्या प्रोटॉन की संख्या से कम हो जाती है, और इस कारण उसका कुल आवेश धनात्मक हो जाता है। दूसरा पदार्थ, जो इलेक्ट्रॉन ग्रहण करता है, ऋणात्मक रूप से आवेशित हो जाता है। अब ऐसी परि-स्थिति में जब विपरीत रूप से आवेशित वस्तुएं पास-पास हों, तो उनके बीच विद्युत आकर्षण होना स्वाभाविक ही है।

इस जानकारी के आधार पर आइए अब हम कंघे और बाल के उदाहरण को ज़रा और बारीकी से देखें। प्लास्टिक के कंघे से सूखे बालों को संवारने के दौरान बालों और कंघे के बीच घर्षण होता है।

न सृजन, न विनाश

घर्षण से आवेशन की चर्चा के दौरान यह बात सामने आती है कि इलेक्ट्रॉनों का न तो सृजन होता है और न ही उनका अस्तित्व कभी खत्म होता है। वो तो बस एक पदार्थ से स्थानांतरित होते हैं। अर्थात आवेश संरक्षित रहता है। पर आवेश का संरक्षण केवल इन उदाहरणों तक ही सीमित नहीं है। हरेक घटना या प्रक्रिया में, चाहे वह बड़े पैमाने की हो या परमाणुओं के स्तर की, कुल आवेश हमेशा संरक्षित ही पाया गया है। विज्ञान जगत के पास अभी तक कोई ऐसा उदाहरण नहीं है, जिसमें आवेश का सृजन या विनाश होता है। इस रोचक तथ्य ने एक नियम का दर्जा पाया है – आवेश संरक्षण नियम। महत्व की दृष्टि से, यह नियम भौतिकी में 'ऊर्जा संरक्षण' और 'संवेग संरक्षण' के नियमों के समकक्ष माना गया है।

घर्षण के कारण कंघे के परमाणु, बालों के परमाणु के नज़दीक आ जाते हैं। अब चूंकि प्लास्टिक के परमाणुओं में बालों के परमाणुओं के बनिस्बत इलेक्ट्रॉनों को अपने में बांधे रखने की ज़्यादा शक्ति है, इलेक्ट्रॉन बालों के परमाणुओं से टूटकर कंघे के परमाणुओं के साथ बंध जाते हैं। फलस्वरूप कंघे का कुल आवेश ऋणात्मक और बालों का धनात्मक हो जाता है और दोनों के बीच जन्म लेता है – विद्युत आकर्षण।

2. संपर्क द्वारा आवेशन

एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में इलेक्ट्रॉनों के स्थानांतरण के लिए घर्षण का होना ज़रूरी नहीं। एक पदार्थ को दूसरे से मात्र छूने भर से भी इलेक्ट्रॉन इधर-उधर आ-जा सकते हैं। इस तरीके को संपर्क द्वारा आवेशन कहते हैं। पर इसके लिए दोनों वस्तुओं में से कम-से-कम एक का आवेशित होना ज़रूरी है। जैसे एक आवेशित छड़ को अगर हम एक उदासीन वस्तु से संपर्क कराते हैं तो कुछ आवेश उदासीन वस्तु में उतर आएगा और उदासीन वस्तु आवेशित हो जाएगी।

3. प्रेरण द्वारा आवेशन

किसी पदार्थ को आवेशित करने का एक सरल तरीका और है। वह है प्रेरण द्वारा। इस प्रक्रिया में एक आवेशित वस्तु के विद्युतीय प्रभाव के कारण उसके नज़दीक की उदासीन वस्तु के इलेक्ट्रॉनों का संतुलन बिगड़ जाता है। नतीजतन वह उदासीन वस्तु अस्थाई रूप से आवेशित हो जाती है। इस विधि को बेहतर समझने के लिए आइए हम चित्र में दिए गए उदासीन सुचालक गोले पर गौर करते हैं। इस गोले को एक कुचालक धागे से लटकाया गया है।

अब जब एक ऋणात्मक रूप से आवेशित छड़ इस गोले के समीप लाई जाती है तो विकर्षण के कारण गोले की सतह के चालक इलेक्ट्रॉन छड़ की विपरीत दिशा में इकट्ठा हो जाते हैं। इसके कारण

क्यों खड़े बाल: एक अत्यंत आवेशित गोले को छूने भर से बालिका आवेशित हो जाती है। उसके बालों में एक-सा आवेश आ जाने से वे एक दूसरे को दूर धकेलने की कोशिश करते हैं। इसी वजह से वे सेही के खड़े हुए बालों की तरह दिखाई दे रहे हैं।

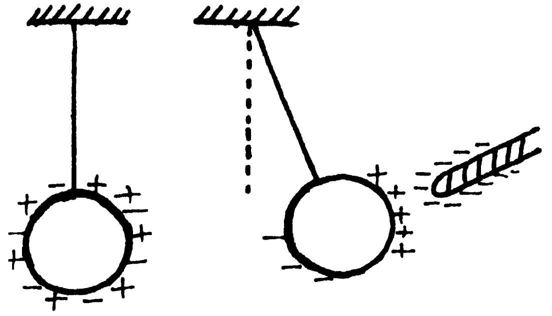

प्रेरण द्वारा आवेशन: धातु का उदासीन सुचालक गोला जिस पर धनात्मक और ऋणात्मक आवेश समान रूप से बिखरे हुए हैं। ऋणात्मक रूप से आवेशित छड़ उसके पास लाने से विकर्षण के कारण गोले की सतह के इलेक्ट्रॉन छड़ की विपरीत दिशा में इकट्ठे हो जाते हैं। इस वजह से छड़ के पास वाली गोले की सतह धनात्मक रूप से आवेशित हो जाती है और धातु का गोला छड़ की तरफ खिंच जाता है।

छड़ के पास वाली गोले की सतह धनात्मक रूप से आवेशित हो जाती है और विपरीत सतह ऋणात्मक रूप से। अब धनात्मक आवेश वाली सतह गोले को छड़ की तरफ आकर्षित करती है और ऋणात्मक आवेश वाली सतह गोले को छड़ से दूर ढकेलती है। कुलंब के नियम के अनुसार दूरी बढ़ने पर विद्युत बल घटता है। इसलिए छड़ के पास वाली गोले की सतह और छड़ के बीच का विद्युत आकर्षण, छड़ से दूर वाली सतह और छड़ के बीच के विद्युत विकर्षण से ज़्यादा होगा। परिणामस्वरूप गोला छड़ की ओर झूल जाएगा।

आवेशन की प्रक्रिया को समझने के बाद हम आते हैं अपने किस्से के अंतिम पड़ाव पर। हमने बात शुरू की थी बिजली से। उसको समझने की कोशिश में हमारा परिचय हुआ आवेश, विद्युत बल और आवेशन की महत्वपूर्ण अवधारणाओं से। अंत में फिर से वज्रपात पर लौट आते हैं – पर इस बार एक बिल्कुल ही फर्क संदर्भ में।

वज्रपात की कीमत

अगर मैं आपसे वज्रपात की कीमत आंकने के लिए कहूं तो? सवाल थोड़ा अटपटा है न! पर आज के उपभोक्तावादी युग में जब धीरे-धीरे सभी चीज़ें बिकाऊ होती जा रही हैं वज्रपात की कीमत आंकना भी शायद निरर्थक नहीं है। वज्रपात की कीमत से हमारा तात्पर्य है – वज्रपात के लिए विद्युत ऊर्जा की आवश्यक मात्रा पता करना और यह हिसाब लगाना कि इतनी ही बिजली यदि हम अपने घर में इस्तेमाल करें तो कितना पैसा देना होगा। आगे पढ़ने से पहले आप खुद मन में अंदाज़ा लगाने की कोशिश कीजिए कि आसमान में जो एक बार बिजली चमकती है उतनी अगर घर में जलाएं तो कितना खर्चा होगा। आपका अंदाज़ा जो भी हो, हमारी गणना आपको निश्चित रूप से चौंका देगी!

हिसाब कुछ इस प्रकार है

वज्रपात एक क्षणिक घटना है। अधिकांश तड़ित सेकेंड के मात्र हज़ारवें हिस्से तक जीवित रहते हैं। वज्रपात में विद्युत का शुरुआती विभव (वोल्टेज) करीब पांच करोड़ वोल्ट तक होता है। और इस ज़बरदस्त वोल्टेज के कारण इतने नन्हें अंतराल में ही लगभग दो लाख एम्पीयर करंट धरती में प्रवाहित हो जाता है। (याद रहे कि हमारे घरों में आने वाली बिजली की लाइन 240

वोल्ट और 20 एम्पीयर की होती है।)

वॉट की इकाइयों में शक्ति की मात्रा पता लगाने के लिए हमें वोल्टेज और करंट की संख्याओं को आपस में गुणा करना पड़ता है। पर चूंकि जब तक बिजली गिरती है उसका वोल्टेज शून्य तक उतर आता है, कुल ऊर्जा का हिसाब लगाने के लिए हमें औसत वोल्टेज (यानी प्रारंभिक वोल्टेज का आधा) लेना पड़ेगा। अर्थात

$$\text{बिजली की एक चमकार में कुल ऊर्जा} = \frac{5,00,00,000 \times 2,00,000}{2} \text{ वॉट}$$

$$= 50,00,00,00,00,000 \text{ वॉट}$$

$$= 5 \text{ अरब किलोवॉट}$$

है न वज्रपात शक्तिशाली! भाई, इन्द्र देवता का अस्त्र जो ठहरा। अब वज्रपात की ऊर्जा को किलोवॉट घंटे (यानी यूनिटों) में व्यक्त करने के लिए समय को भी तो गणना में शामिल करना पड़ेगा। एक किलोवॉट यानी 1000 वॉट बिजली एक घंटे तक खर्च होती रहे तो उसे एक किलोवॉट कहते हैं। बिजली की एक चमकार में 5 अरब किलोवॉट जितनी बड़ी शक्ति का संचार सेकेंड के सिर्फ हज़ारवें हिस्से तक ही जारी रहता है। आइए, समय से भाग देकर पता लगाएं कि कितने यूनिट बनेंगे इसके।

$$\frac{5000,000,000}{(3600 \times 1000)} = 1400 \text{ यूनिट}$$

बिजली के घरेलू इस्तेमाल के लिए हमें एक यूनिट के लिए रु. 1.40 देने पड़ते हैं। इस दर से वज्रपात की कीमत हुई:

$$1400 \times 1.40 = 1960 \text{ रुपए मात्र!}$$

क्यों है न सस्ती का ज़माना! और आपका अंदाज़ा कैसा रहा!

क्यों गिरी बिजली

बिजली का कड़कना और गिरना भी प्रेरण द्वारा आवेशन का एक अनूठा उदाहरण है। अक्सर, बारिश के दौरान तेज़ हवाओं, पानी की बूंदों और वातावरण में आवेशित कणों की मौजूदगी के कारण बादलों में आवेश का संतुलन बिगड़ जाता है। ऋणात्मक आवेश बादल की निचली सतह (धरती की ओर वाली) पर इकट्ठा होने लगते हैं और धनात्मक आवेश बादल के ऊपरी हिस्सों की ओर पलायन कर जाते हैं। बादलों की निचली आवेशित सतह धरती की सतह पर धन आवेश प्रेरित करती है। और दोनों सतहों के बीच जन्म लेता है गज़ब का

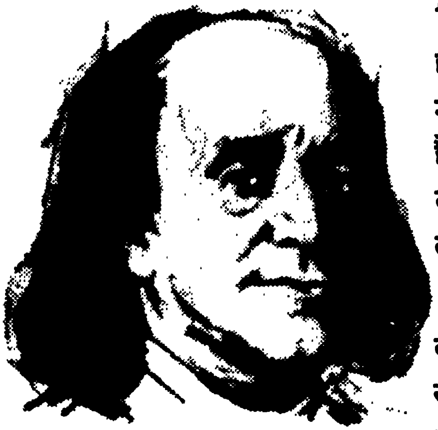

विद्युतीय आकर्षण। यह आकर्षण इतना ज़ोरदार होता है कि बादल से ऋण आवेश बहुत ज़्यादा मात्रा में धरती की ओर बहुत तेज़ी से दौड़ पड़ता है। बादलों और धरती के बीच या आपस में बादलों के बीच आवेश के इस शक्तिशाली और तीव्र प्रवाह को ही बिजली गिरना कहते हैं।

बेंजामिन फ्रेंकलिन पहले इंसान थे जो सिद्ध कर पाए कि वज्रपात एक विद्युत क्रिया है। वज्रपात से इमारतों को बचाने का कारगर उपाय भी सबसे पहले फ्रेंकलिन ने ही सुझाया था। उन्होंने पाया कि नुकीले कोनों से आवेश का डिस्चार्ज काफी आसानी से होता है। इस खोज की मदद से फ्रेंकलिन ने तड़ित चालक (लाइटनिंग रॉड) का आविष्कार किया था। इस विधि में धातु की एक नुकीली छड़ इमारत के सबसे ऊंचे स्थान पर लगा दी जाती है और उसे तार के ज़रिए धरती से जोड़ दिया जाता है। बादलों द्वारा इमारत पर प्रेरित किया गया आवेश इस छड़ के द्वारा डिस्चार्ज या लीक कर जाता है जिससे बिजली गिरने की नौबत ही नहीं आ पाती। और अगर किसी कारण से छड़ से पर्याप्त मात्रा में आवेश डिस्चार्ज नहीं हो पाता है और बिजली गिर ही जाती है, तो भी इमारत को नुकसान नहीं पहुंचता क्योंकि बिजली मकान के किसी और हिस्से के बनिस्बत, छड़ की ओर ही आकर्षित होती है और कोई क्षति पहुंचाए बिना तार के द्वारा भूमि में प्रवाहित हो जाती है।

आवेश से काम करती एक मशीन फोटो कॉपी की

जी हां, वही बेहद मामूली-सी सहूलियत जो आजकल हर गली-नुक्कड़ पे मिल जाती है फोटोकॉपी बनाने की सुविधा। यह भी विद्युत आवेश के ज़रिए अपना सेकेण्ड वाला कमाल करती है। फोटोस्टेट मशीन की पूरी कार्य प्रणाली को मोटे तौर पर चार चरणों में बांटा जा सकता है:

एक सिलिकॉन की प्लेट को, अंधेरे में, धनात्मक रूप से आवेशित किया जाता है (चित्र अ और ब)।

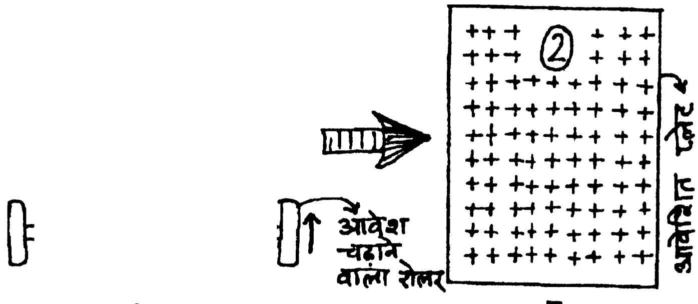

अ ब

2. अब उस चित्र के प्रतिबिंब को, जिसकी हमें कॉपियां बनानी हैं, आवेशित प्लेट पर प्रोजेक्ट किया जाता है। लगभग उसी तरह जिस तरह सिनेमा हॉल में फिल्म की रील को प्रोजेक्टर के ज़रिए पर्दे पर दर्शाया जाता है। (चित्र स)

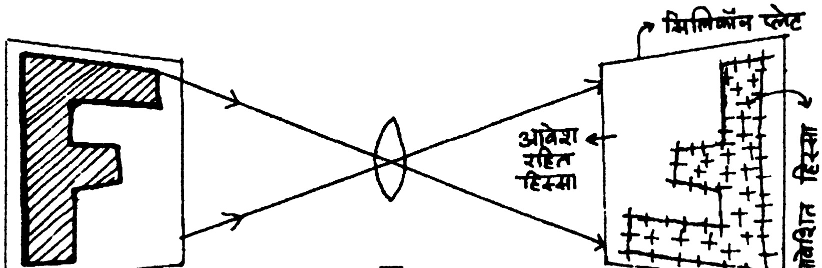

स

इस प्रक्रिया के द्वारा प्रकाश और छाया का एक 'पेटर्न' जो कॉपी किये जाने वाले चित्र का हूबहू प्रतिरूप होता है, आवेशित प्लेट पर पड़ता है। सिलिकॉन एक अर्धचालक है और अर्धचालकों में एक विशेष गुण होता है कि अगर उनकी सतह को अंधेरे में एक बार आवेशित कर दिया जाए तो आवेश सतह पर एक लंबे समय तक बरकरार रहता है। पर अगर आवेशित सतह पर (कुछ खास रंगों की) रोशनी पड़ जाए तो आवेश पल भर में डिस्चार्ज हो जाता है। इसलिए आवेशित प्लेट के जिन हिस्सों पर रोशनी पड़ती है, वहां तो आवेश डिस्चार्ज हो

जाता है, पर जहां रोशनी नहीं पड़ती वहां आवेश बरकरार रहता है।

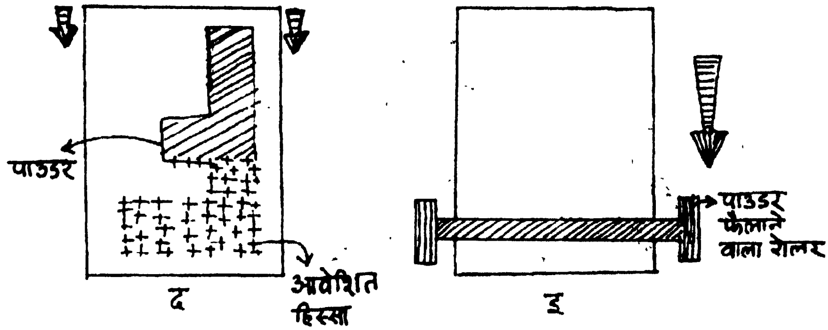

3. तृतीय चरण में, बारीक पाउडर (टोनर) सिलिकॉन प्लेट पर समान रूप से फैलाया जाता है। प्लास्टिक के बने इस पाउडर के कणों पर ऋणात्मक आवेश होता है। इसलिए पाउडर के कण प्लेट के आवेशित हिस्सों से (यानी केवल उन हिस्सों से जहां रोशनी नहीं पड़ती) विद्युत आकर्षण के कारण चिपक जाते हैं (चित्र द और इ)।

और चूंकि प्लेट पर आवेशित और आवेश रहित हिस्सों का पेटर्न कॉपी किये जाने वाले चित्र का प्रतिरूप होता है, पाउडर के कण प्लेट पर चिपकर ठीक वैसा ही चित्र बनाते हैं जैसा कि हमारी असली कॉपी पर मौजूद था।

4. आखिरी चरण में दो क्रियाएं होती हैं। पहली में सिलिकॉन प्लेट पर एक कोरा कागज़ बिछाकर उसे पीछे से धनात्मक आवेश से आवेशित किया जाता है। कागज़ का आवेश प्लेट के आवेश से ज़्यादा रखा जाता है, जिसके कारण प्लास्टिक के कण प्लेट से उतर कर कागज़ पर चिपक जाते हैं। और इस तरह उतर जाती है एक कोरे कागज़ पर असली चित्र की हूबहू कॉपी। पर चूंकि प्लास्टिक कण कागज़ पर केवल हल्की तरह से ही चिपके हुए होते हैं, इसके बाद कागज़ को गर्म किया जाता है। इससे कण पिघलकर कागज़ पर अच्छी तरह से चिपक जाते हैं, और आपको मिल जाती है चित्र की एक फोटोस्टेट कॉपी (चित्र फ और ज)।

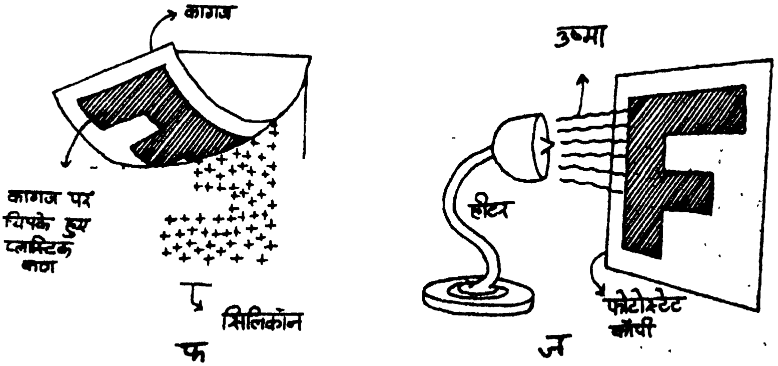

अजय शर्मा – एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध।

कहने को बहार तो आती है मगर...

सवाल : गूलर के फूल क्यों नहीं दिखते?

जवाब: गूलर में भी दूसरे पेड-पौधों की तरह फूल लगते हैं लेकिन जिस तरह अन्य पेड़-पौधों में फूल किसी न किसी मौसम में दिखाई दे ही जाते हैं, गूलर में साल भर के दौरान कभी भी फूल नहीं दिखते। इसलिए यह सवाल अक्सर पूछा जाता है कि गूलर के फूल क्यों नहीं दिखते। दरअसल गूलर में जिसे हम फल समझते हैं वह फल नहीं बल्कि फूल का ही एक हिस्सा होता है। एकाएक तो हमारी बात पर यकीन नहीं होगा लेकिन खुद अपनी आंखों से देखेंगे तो ज़रूर यकीन करना ही पड़ेगा।

चलिए, सबसे पहले गूलर के एक-दो फूल ले आते हैं। यदि गूलर का पेड़ ढूंढने में परेशानी हो तो पीपल या बरगद के पेड़ के नीचे गिरे हुए फलों से भी काम चल जाएगा क्योंकि गूलर, पीपल तथा बरगद एक ही जाति के पेड़ होने के कारण इनमें लगभग एक ही तरह के फूल लगते हैं। इन फलों को ऊपर से देखने पर ये गोल-गोल से दिखते हैं। फल की ऊपरी सतह को ध्यान से देखने पर एक छेद दिखाई देगा। इस छेद के बारे में बाद में बात करेंगे। अब गूलर के फलों को थोड़ा चीरकर देखिए। इसमें दानों जैसी जमावट दिखाई देगी। अंदर के हिस्से की जमावट को हैंडलेंस की

मदद से देखने की कोशिश करें तो हमें पुंकेसर और स्त्रीकेसर दिखाई देंगे। इस चित्र से उन्हें पहचानने में मदद मिलेगी।

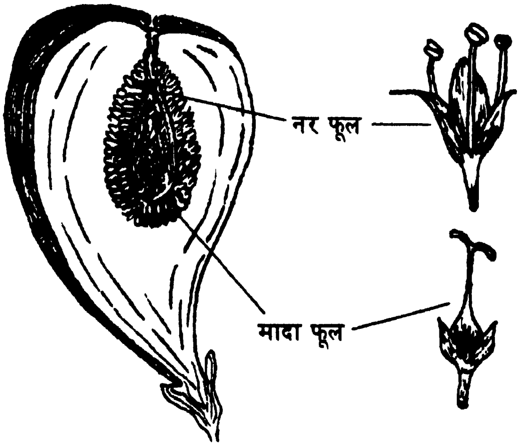

फूलों के बारे में आपने पढ़ा होगा कि आमतौर पर फूलों में पुंकेसर और स्त्रीकेसर दोनों होते हैं लेकिन कुछ फूल ऐसे भी होते हैं जिनमें सिर्फ पुंकेसर पाए जाते हैं और कुछ फूलों में केवल स्त्रीकेसर ही होता है। जैसे गुड़हल या बेशरम के फूल में पुंकेसर और स्त्रीकेसर दोनों मिलते हैं। लौकी या पपीते के फूल में सिर्फ स्त्रीकेसर या सिर्फ पुंकेसर वाले फूल ही खिल सकते हैं। गूलर, बरगद, पीपल और अंजीर में सिर्फ पुंकेसर या सिर्फ स्त्रीकेसर वाले ढेर सारे फूल एक साथ खिले होते हैं। जिन फूलों में पुंकेसर और स्त्रीकेसर दोनों होते हैं उन्हें पूर्ण फ़ूल कहते हैं। वे फूल जिनमें सिर्फ पुंकेसर हो उन्हें नर फूल और जिन फूलों में केवल स्त्रीकेसर हो उन्हें मादा फूल कहते हैं।

गूलर के फूल में ढेर सारे नर और मादा फूल एक गुच्छे की शक्ल में गुफानुमा गड्ढे के अंदर जमे होते हैं।

अब आपके मन में एक सवाल ज़रूर उठ रहा होगा कि इस बंद फलनुमा रचना के अंदर खिले फूलों का निषेचन कैसे होता होगा और फल कैसे बनता होगा? इस सवाल का जवाब आपके खुद के अवलोकन से मिल सकता है। याद कीजिए कभी गूलर, पीपल वगैरह के टपके हुए फल को तोड़कर देखा हो तो आपने ज़रूर उसके अंदर ज़िंदा या मरे हुए कीड़े देखे होंगे। अब सोचिए कि कीड़ा अंदर कैसे गया और क्यों गया होगा?

शुरुआत में ही बात हुई थी न कि गूलर के फूल के ऊपरी हिस्से में एक छेद होता है। इस छेद में से ही कोई भी कीड़ा वगैरह भोजन की तलाश में गुफानुमा छेद में घुस जाता है और उसके पैरों से चिपके परागकण स्त्रीकेसर से चिपककर

मादा फूल को निषेचित कर देते हैं। निषेचन के बाद मादा फूल पर महीन दानेदार फल लगते हैं। गूलर के पेड़ से पककर टपके हुए फलों के गूदेदार हिस्से को चीरकर इन दानों को आसानी से देखा जा सकता है। एक और मज़ेदार बात बताएं कि पीपल, बरगद, गूलर और अंजीर में जिस गूदेदार हिस्से को हम खाते हैं वह फल नहीं बल्कि पुष्पासन या फूल का आधार होता है।

छठवें अंक में हमने दो सवाल पूछे थे। कई लोगों ने जवाब ढूंढने की कोशिश की। लेकिन गिरगिट वाले सवाल को लेकर सबसे सटीक जवाब था लोकेश रणदिवे, सूरजगंज, इटारसी, ज़िला होशंगाबाद का। इसे हम प्रकाशित कर रहे हैं।

संपादक मंडल

परत के नीचे रंगीन .....

सवाल : गिरगिट अपना रंग कैसे बदलता है। मनुष्य या दूसरे जानवर अपना रंग क्यों नहीं बदलते?

जवाब: गिरगिट की त्वचा की ऊपरी परत पारदर्शक होती है। इस परत के नीचे की कोशिकाओं में पीले, लाल तथा काले रंग के पदार्थ होते हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सकते हैं। जब गिरगिट की कोशिकाएं सिकुड़ती हैं तो एक स्थान पर इन रंगीन पदार्थों की संख्या बढ़ जाती है। यह तो स्वाभाविक है न? जब एक स्थान पर ये पदार्थ बढ़ जाते हैं तो त्वचा का रंग काला हो जाता है। जब ये दाने शरीर में तितर-बितर होते हैं तो दूसरे रंग पैदा होते जाते हैं। इस प्रकार कोशिकाओं के सिकुड़ने-फैलने से त्वचा का रंग बदलता है।

अब आप तो बोलेंगे ही कि ये कोशिकाएं किस प्रकार सिकुड़ती हैं भाई! इसका कारण है जब गिरगिट भाई को

गुस्सा आता है या वह डर जाते हैं तो उनकी कोशिकाओं को सिकुड़ने का आदेश मिलता है। इनके सिकुड़ने से त्वचा का रंग काला हो जाता है, जैसा कि मैंने पहले ही बताया था। उत्तेजना के कारण एवं उसके डरने पर शरीर पर पीले धब्बे दिखते हैं। सूरज की गरम रोशनी में भी इसकी त्वचा का रंग काला हो जाता है। लेकिन अंधेरे में उसका रंग हल्का पीला हो जाता है। इस प्रकार गिरगिट में भय, गुस्सा, सूर्य का प्रकाश, तापमान आदि के कारण कोशिकाएं सिकुड़ती हैं, फैलती हैं अतः रंग बदलता है। वैसे रहा प्रश्न कि मनुष्य या दूसरे जानवर रंग क्यों नहीं बदलते? स्पष्ट है कि इनकी त्वचा न तो पारदर्शक होती है और न ही त्वचा की नीचे की कोशिकाओं में लाल, काले, पीले रंग के पदार्थ ही होते हैं। यदि किसी जीव की त्वचा पारदर्शक हो भी गई तो भी ये पदार्थ कहां से आएंगे? वैसे भी गिरगिट तो धीमी गति से चलता है अतः यह गुण तो उसे बहुत सहायता करता है।

(गूलर वाला सवाल रुस्तम कुमार चव्हाण, मलोथर, इटारसी ने और गिरगिट का सवाल माधवी पुरोहित, टोंकखुर्द, ज़िला देवास ने पूछा था)

(कैसे बदलते हैं रंग अचानक? पेज 36 पर भी।)

इस बार का सवाल

सवाल : ये पोलियो कौन सी बीमारी है? यदि बच्चे को पोलियो कि दवाई नहीं पिलाते हैं तो बच्चा अपंग क्यों हो जाता है?

बाबूलाल, सुनील, कक्षा-7,
गांव अमलेटा, ज़िला रतलाम

शायद इस सवाल का जवाब आपके पास हो। हमें लिख भेजिए। सही जवाबों को हम अगले अंक में प्रकाशित करेंगे। हमारा पता है सवालीराम, द्वारा एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद 461 001

ज़रा सिर तो खुजलाइए

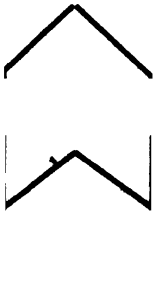

प्लास्टिक की जीभी से एक मोटर बोट जैसी आकृति बनाइए और उसकी दुम में कपूर का टुकड़ा फंसाकर उसे पानी में धीरे–से छोड़िए? अरे! यह भागने क्यों लगा।

इसका कारण हमें लिख भेजिए। संदर्भ, द्वारा एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद – 461 001 के पते पर। सही जवाब को अगले अंक में प्रकाशित करेंगे।

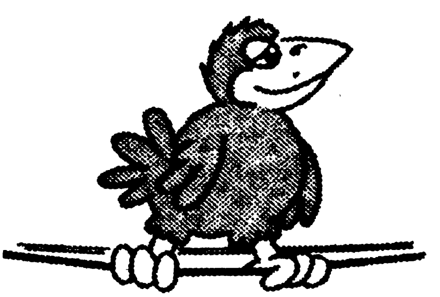

क्यों नहीं लगा चिड़िया को

ज़रा सिर तो खुजलाइए

कई जवाब मिले हमें। अधिकतर सही। दो जवाब हम यहां दे रहे हैं। जिनमें परिपथ पूरा होने की बात को अलग-अलग स्पष्ट किया गया है। दोनो ही सही हैं। साथ ही उन लोगों के नाम भी जिन्होंने सही जवाब भेजे।

पहला जवाब: किसी जीव को करंट लगने से मतलब है उस व्यक्ति के शरीर का माध्यम लेकर विद्युत अर्थ में चली जाए अतः यदि कोई भी जीव भूमि से संपर्कित न हो तो उसके द्वारा विद्युत स्पर्श होने के बाद भी उसके शरीर में विद्युत प्रवाह नहीं होगा, यदि इन चिड़ियों के स्थान पर यदि कोई मानव भी होता तो भी उसे करंट नहीं लगता।

प्रमोद कुमार मैथिल, बाल मंदिर के पास
पुरानी इटारसी

दूसरा जवाब: चिड़िया केवल एक तार पर बैठती है उसका संपर्क किसी दूसरे तार से नहीं होता अतः उसे अर्थ नहीं मिलता। इसलिए उसे करंट नहीं लगता। हम भी सूखी रबर की चप्पलें पहन कर ऐसा कर सकते हैं पर आप करना नहीं।

चम्पालाल कुशवाहा, हिरनखेड़ा
होशंगाबाद

इन्होंने भी सही जवाब भेजे: प्रमोद तिवारी, ग्रा. तागा, जाजगीर, ज़िला बिलासपुर, म. प्र., बलदेव जुमनानी, कक्षा -10, साधु वासवाणी हाईस्कूल, सिंधी कॉलोनी, ग्वालटोली, होशंगाबाद। *इस बार का सवाल पेज नंबर 73 पर है।*

शॉक या झटके का अहसास तभी होता है जब हम किसी भी परिपथ में दो ऐसे बिंदुओं को छुएं जो अलग-अलग वोल्टेज पर हों। तब ही आपके शरीर में से विद्युत धारा बहेगी। केवल एक तार को छूने से, चाहे वह 1100 वोल्ट की क्यों न हो आपके शरीर में से विद्युत धारा नहीं बहेगी, चाहे आप उसे दो हाथ से पकड़कर लटक जाएं।

एक तार को छूना और धरती को छूना भी वही स्थिति पैदा करता है जो दो तार को छूने पर होती है। इसलिए अगर आप तार और धरती दोनों के संपर्क में होंगे तो शॉक लगेगा।

झटका कितना ज़ोरदार और कितना खतरनाक होगा यह इस बात पर निर्भर करेगा कि आपने जिन तारों को छुआ है उन दोनो के बीच विद्युत विभव (वोल्टेज अंतर) कितना है। इन दोनों बातों से यह तय होगा कि आपके शरीर में से कितना करंट बहेगा और झटका कितना घातक होगा। 0.05 एम्पियर से 0.10 तक का करंट भी जानलेवा हो सकता है।

जब हैंडपंप बिगड़े तो..

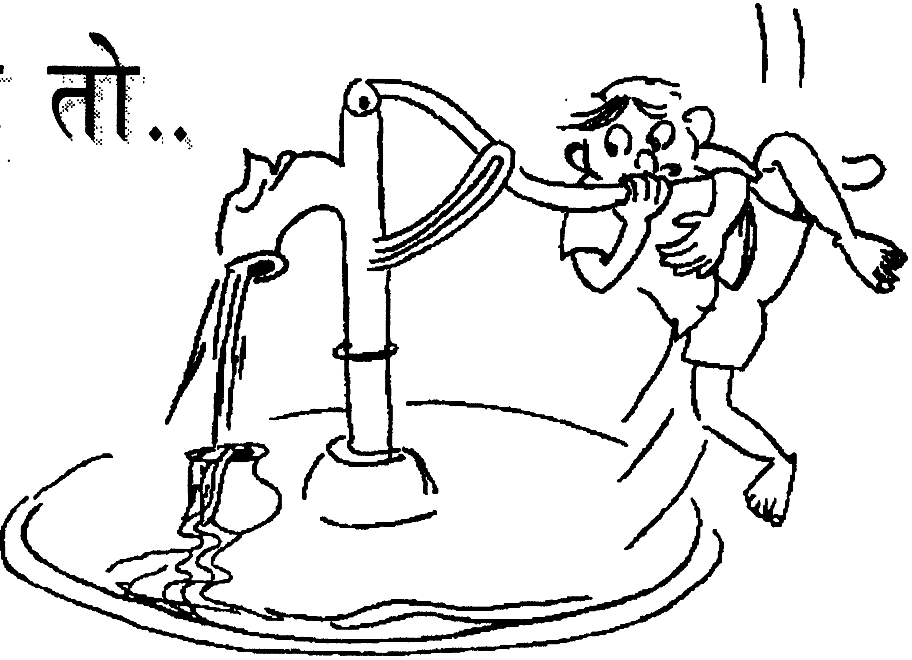

राजेन्द्र बंधु, सुनील कटियार

अपने देश के ग्रामीण इलाकों में और खासकर आदिवासी अंचलों में पीने के पानी की समस्या बहुत विकट रही है। महिलाओं व बच्चों को मीलों चलकर नदी-नालों या कुओं से पानी भरकर लाना पड़ता है। अक्सर यह पानी दूषित हो जाता है और उल्टी, दस्त, हैजा, पीलिया जैसी बीमारियां महामारी का रूप ले लेती हैं। इस समस्या का एक सरल निदान 'हैंडपंप' है। इसके द्वारा मोहल्ले में ही लोगों को पानी उपलब्ध करवाया जा सकता है और वह भी साफ पानी। इतना महत्त्व होते हुए भी देखा गया है कि गांवों में हैंडपंप खराब पड़े रहते हैं। कोई भी उपकरण उपयोग के दौरान खराब तो होता ही है। अगर लोगों में उसके बारे में पर्याप्त जानकारी हो और अन्य ज़रूरी व्यवस्था भी हो तो मरम्मत भी आसान हो सकती है।

देवास ज़िले की बागली तहसील में 'समाज प्रगति सहयोग' नामक संस्था ने इस मामले में उल्लेखनीय काम किया है। उन्होंने आदिवासी इलाकों की महिलाओं

व पुरुषों के एक समूह को हैंडपंप की मरम्मत करने का प्रशिक्षण दिया। प्रशिक्षण के बाद उन लोगों को औज़ार और ज़रूरी पुर्ज़े भी इस संस्था ने उपलब्ध करवाए। अब ये महिलाएं और पुरुष खुद अपने गांव के हैंडपंपों की मरम्मत कर रहे हैं। यह व्यवस्था कई महीनों से सफल रूप से चल रही है। इससे यह तो साबित हो गया कि किसी खास तकनीकी डिप्लोमा के बिना, मामूली प्रशिक्षण की मदद से आम लोग भी हैंडपंप की देखरेख कर सकते हैं।

वैसे हैंडपंप एक सरल मशीन है जिसकी कार्य प्रणाली को समझना भी आसान है। इस लेख में यही समझाने का प्रयास किया गया है।

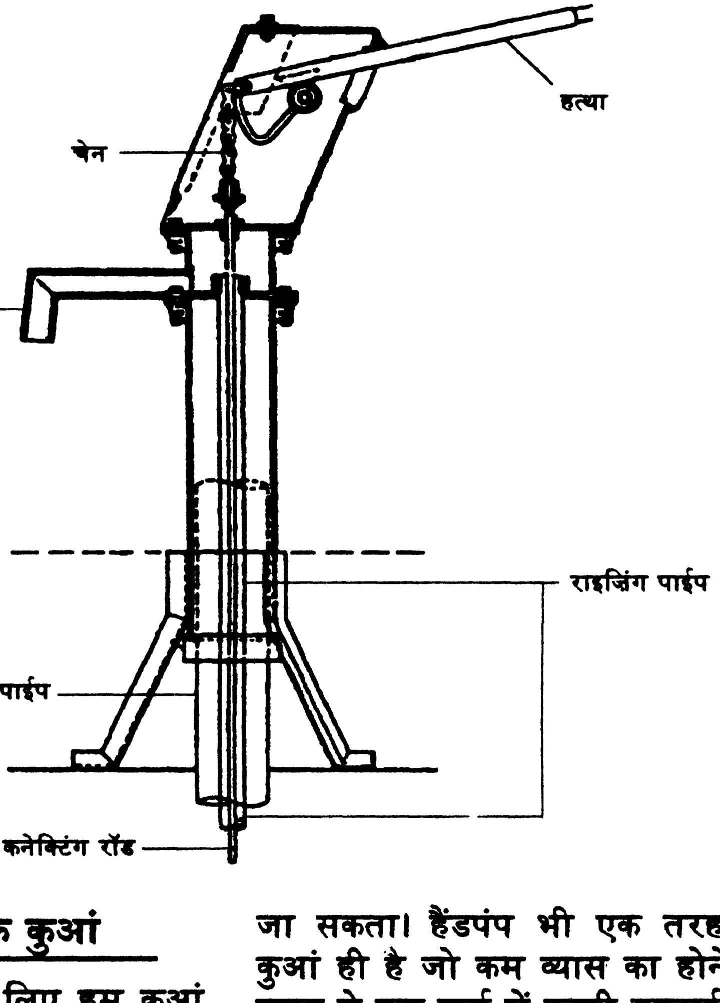

हैंडपंप भी एक कुआं

भूजल निकालने के लिए हम कुआं खोदते हैं। कुआं व्यास में बहुत बड़ा होता है और इसे खोदना काफी खर्चीला होता है इसलिए यह बहुत गहराई तक नहीं जा सकता। हैंडपंप भी एक तरह का कुआं ही है जो कम व्यास का होने की वजह से कम खर्च में काफी गहराई तक जा सकता है। हैंडपंप के लिए किए गए इस गहरे छेद को बोर कहते हैं। कुएं के चारों ओर मिट्टी धसकने से बचाने के

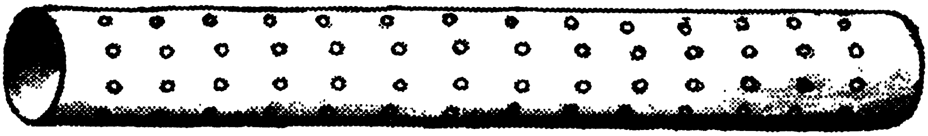

केसिंग पाईप

लिए जैसे दीवार खड़ी करते हैं ठीक वैसे ही बोर में केसिंग पाईप डालते हैं। केसिंग पाईप में महीन छेद होते हैं। यह पाईप बोर की दीवार से सटा होता है। केसिंग पाईप न सिर्फ बोर को धसकने से बचाता है बल्कि बोर में मिट्टी-रेत आने से भी रोकता है।

केसिंग पाइप के अन्दर छनकर आए पानी को हम जिस पाईप की मदद से पंप में ऊपर चढ़ाते हैं उसे राइज़िंग पाईप कहते हैं। राइज़िंग पाईप में पानी को ऊपर चढ़ाने के लिए हवा के दबाव को कम-ज़्यादा किया जाता है। हवा के दबाव को कम या ज़्यादा करने के लिए राइज़िंग पाईप में सबसे नीचे सिलिंडर नाम का एक उपकरण लगा होता है। सिलिंडर को राइज़िंग पाइप के सबसे नीचे के टुकड़े से कसा जाता है और इसे इतनी गहराई पर रखते हैं कि सिलिंडर हमेशा पानी में डूबा रहे। उदाहरण के लिए मान लीजिए आपका बोर 100 फुट गहरा है और बोर में गर्मी में भी 50 फुट तक पानी का स्तर बना रहता है तो सिलिंडर को 65-70 फुट की गहराई पर लगाना ठीक होगा। इसकी मदद से पानी को ऊपर खींचा जाता है, चलिए देखते हैं।

हैंडपंप पानी कैसे देता है

आमतौर पर हम हैंडपंप के हत्थे को ताकत लगाकर तीन-चार बार ऊपर-नीचे करते हैं और पानी नल से गिरने लगता है। लेकिन यह सारी प्रक्रिया इतनी आसान है नहीं कि हत्था चलाया और पानी ऊपर आने लगा। दरअसल यह कमाल सिलिंडर का है।

सिलिंडर में एक पिस्टन, एक चैक वाल्व, वाशर आदि होते हैं। पिस्टन कनेक्टिंग रॉड (एक तरह की लोहे की छड़) द्वारा हैंडपंप के हत्थे से जुड़ा होता है। जब हम हैंडपंप का हत्था चलाते हैं तो कनेक्टिंग रॉड से जुड़े होने के कारण सिलिंडर में पिस्टन भी ऊपर-नीचे होता है।

सिलिंडर में नीचे की ओर एक वाल्व होता है जिसे चैक वाल्व कहते हैं। ऐसे ही सिलिंडर में ऊपर की ओर पिस्टन के साथ भी एक वाल्व होता है जिसे पिस्टन वाल्व कहते हैं। इन दोनों वाल्व की खासियत यह होती है कि यह एक ही दिशा में केवल ऊपर की तरफ खुलते हैं जिससे पानी बोर में से सिलिंडर में तो आ सकता है लेकिन सिलिंडर में से बोर में वापस नहीं जा सकता। इसी तरह राइज़िंग पाईप में चढ़ा हुआ पानी भी वापस सिलिंडर में नहीं गिर सकता। हैंडपंप में पानी कैसे चढ़ता है, वाल्व कैसे काम करते हैं...... इन सभी बारीकियों को चित्रों की मदद से समझ सकते हैं।

ये चित्र अगले पेज पर हैं। पूरी प्रक्रिया को चार हिस्सों में बांटकर समझाया गया है।

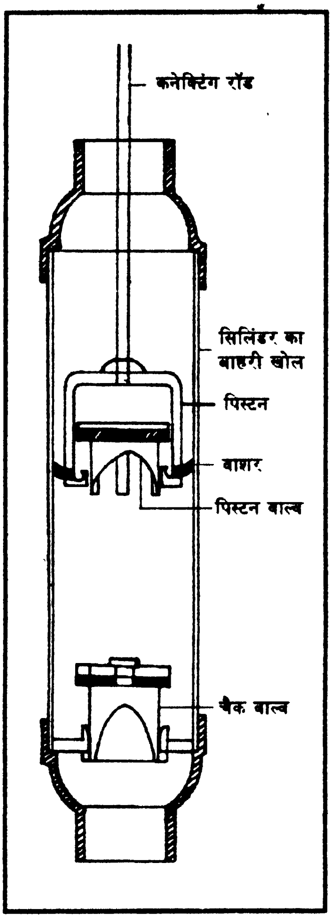

सिलिंडर: हैंडपंप का सबसे महत्वपूर्ण पुर्जा जो इतनी गहराई पर रखा जाता है कि हर समय पानी में डूबा रहे।

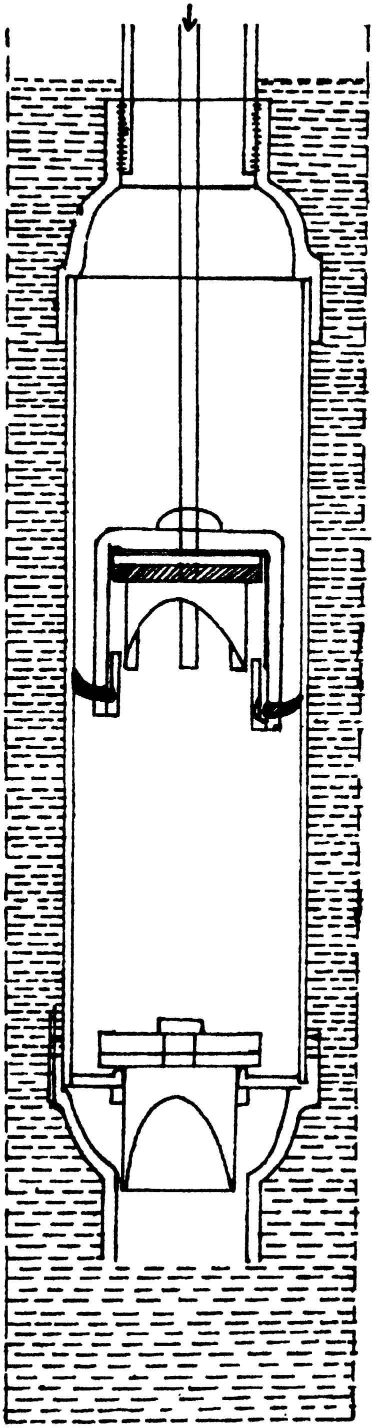

1

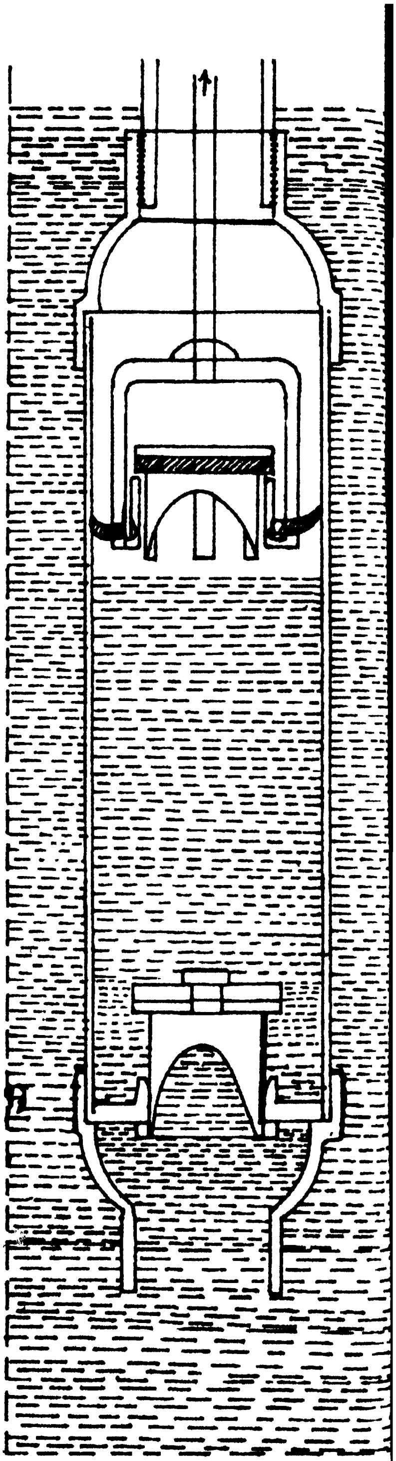

कैसे चढ़ता है पानी ऊपर:

चित्र:1- हैंडपंप के हत्थे को पूरा ऊपर उठा देने पर कनेक्टिंग रॉड और उसकी वजह से सिलिंडर में लगा पिस्टन नीचे जाता है। पिस्टन नीचे जाने से चैक वाल्व और पिस्टन के बीच की हवा का दबाव बढ़ जाता है और चैक वाल्व बंद हो जाता है। हवा पिस्टन वाल्व को ऊपर धकेलती हुई निकल जाती है। यानी कि इस स्थिति में चैक वाल्व बंद रहता है और पिस्टन वाल्व खुला।

चित्र:2- हैंडपंप का हत्था पूरा नीचे करते हैं। अब कनेक्टिंग रॉड और उसकी वजह से सिलिंडर का पिस्टन ऊपर उठता है। इससे चैक वाल्व और

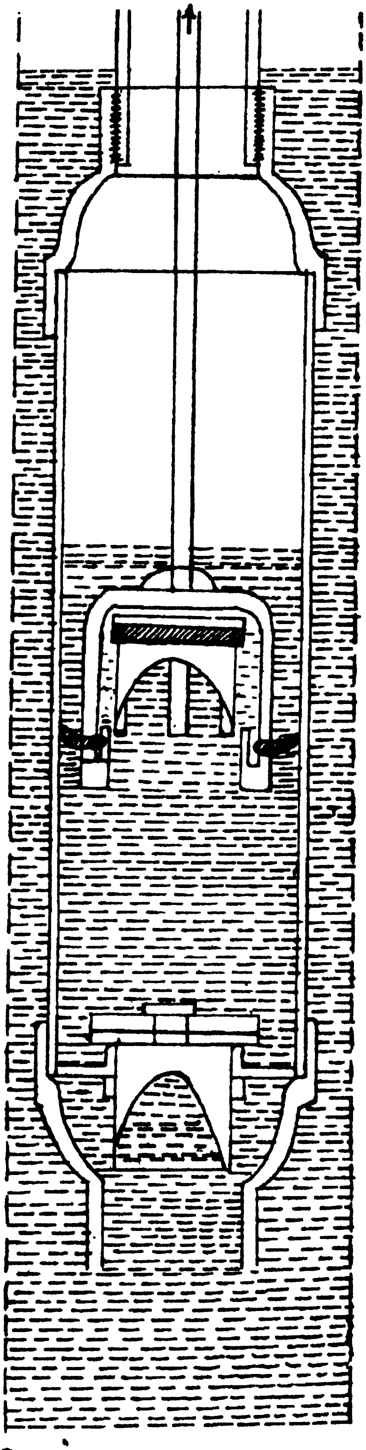

3.

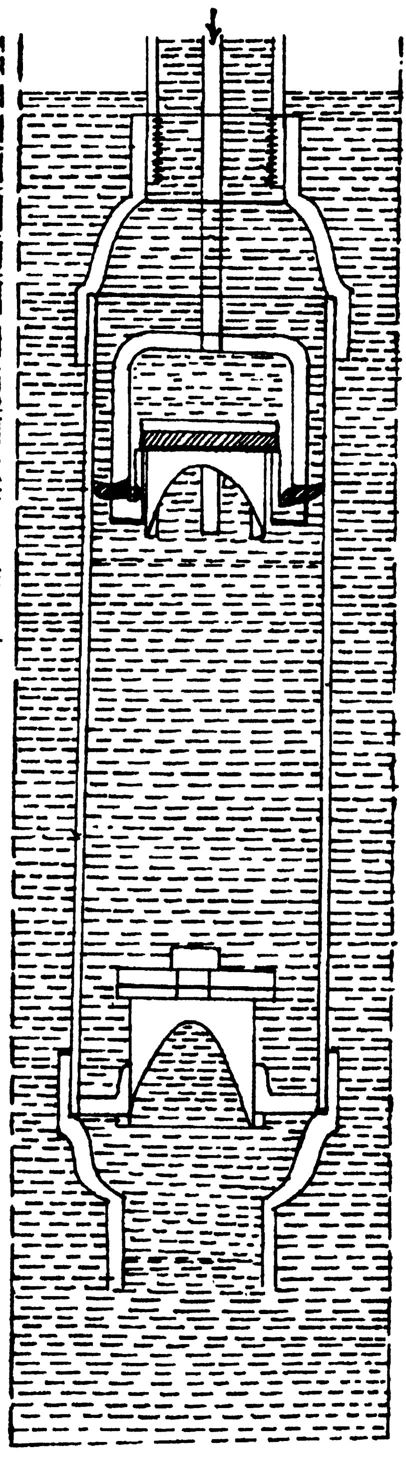

4.

पिस्टन के बीच जगह बढ़ जाने के कारण कम दबाव का क्षेत्र बनता है। अब सिलिंडर के अंदर की तुलना में बाहरी दबाव ज़्यादा होने के कारण पिस्टन वाल्व बंद हो जाता है और सिलिंडर में ऊपर से हवा नहीं आ पाती। लेकिन बोर का पानी सिलिंडर के नीचे लगे चैक वाल्व को आसानी से ऊपर ढकेलकर इस कम दबाव वाले हिस्से में घुस जाता है। इस स्थिति में चैक वाल्व खुला रहता है और पिस्टन वाल्व बंद।

चित्र:3- हैंडपंप के हत्थे को फिर से ऊपर उठाने पर पिस्टन सिलिंडर में नीचे की ओर जाता है। इस बार पिस्टन के नीचे जाने पर सिलिंडर में आया हुआ पानी पिस्टन वाल्व को धकेलकर उठता हुआ राइज़िंग पाईप में चढ़ने लगता है। इस समय चैक वाल्व बंद रहता है और पिस्टन वाल्व खुला।

चित्र:4- हैंडपंप के हत्थे को पूरा नीचे करने पर पिस्टन ऊपर उठने लगता है। अब ऊपर राइज़िंग पाईप में इकट्ठा हुए पानी के दबाव के कारण पिस्टन वाल्व बंद हो जाता है। दूसरी तरफ सिलिंडर के अंदर फिर कम दबाव का क्षेत्र बनता है और बोर के पानी के दबाव से चैक वाल्व ऊपर उठकर खुल जाता है और बोर से पानी फिर से सिलिंडर में आ जाता है। इस समय राइज़िंग पाईप में इकट्ठा पानी को ऊपर की तरफ धक्का लगता है जिस से वह और ऊपर उठता है। इस स्थिति में चैक वाल्व खुला रहता है और पिस्टन वाल्व बंद।

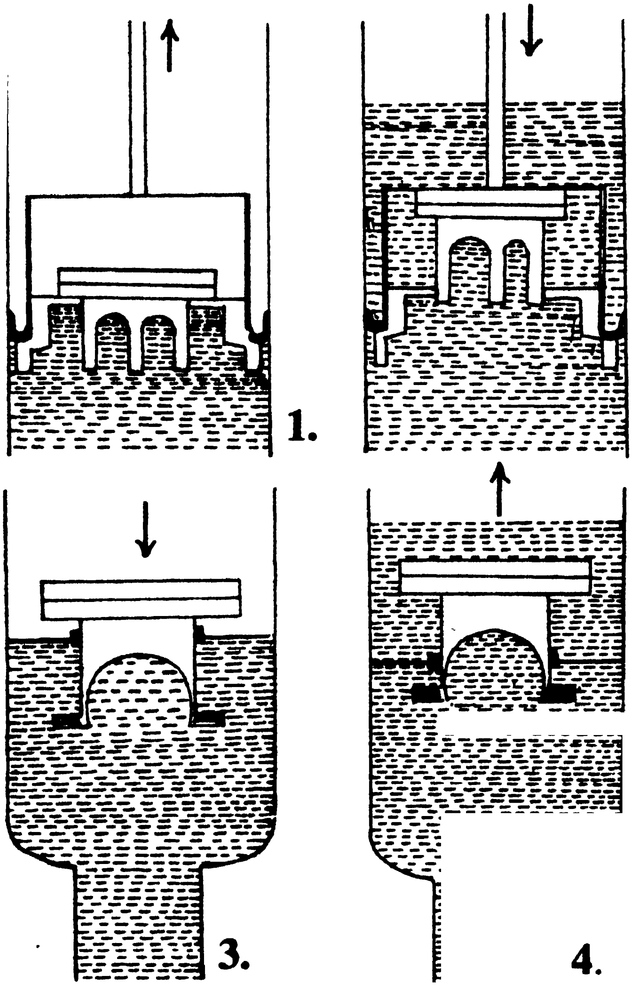

1. ऊपर का पिस्टन वाल्व बंद अवस्था में
2. ऊपर का पिस्टन वाल्व खुला हुआ
3. नीचे का चैक वाल्व बंद अवस्था में
4. नीचे का चैक वाल्व खुला हुआ

हैंडपंप के हत्थे को इस तरह बार-बार ऊपर-नीचे करने से बोर का पानी सिलिंडर में आता है, सिलिंडर से राइज़िंग पाईप में आता है, फिर हैंडपंप के ऊपरी हिस्से में लगी टोंटी से होता हुआ हमारे बाल्टी, बर्तनों में गिरता है।

हैंडपंप के बारे में इतनी बातें हो जाने के बाद आइए हैंडपंप के एक-दो सरल मॉडल बनाकर देखते हैं।

मॉडल: 1

इस मॉडल को बनाने के लिए हम एक स्केच पेन के पीछे की कैप हटाकर केवल निचला हिस्सा लेते हैं। अब एक पुरानी खाली रीफिल लेकर उसका एक सेंटीमीटर लम्बा टुकड़ा काटकर अलग रख लेते हैं। यानी हमारे पास दो टुकड़े हो गए, एक

लम्बा टुकड़ा तथा एक छोटा टुकड़ा। रीफिल की पीतल या स्टील वाली टिप निकालकर रीफिल के बड़े टुकड़े के एक सिरे पर धागा लपेटना शुरू करते हैं। रीफिल पर धागे को इतनी मोटाई तक लपेटते हैं कि रीफिल को स्केच पेन के अंदर थोड़ी कठिनाई से चलाया जा सके। अब स्केच पेन के ऊपरी सिरे से एक सेंटीमीटर नीचे की ओर गरम सुई की सहायता से एक छेद करके उसमें रीफिल का छोटा टुकड़ा फंसा देते हैं। यह बन गया पंप का नल वाला हिस्सा।

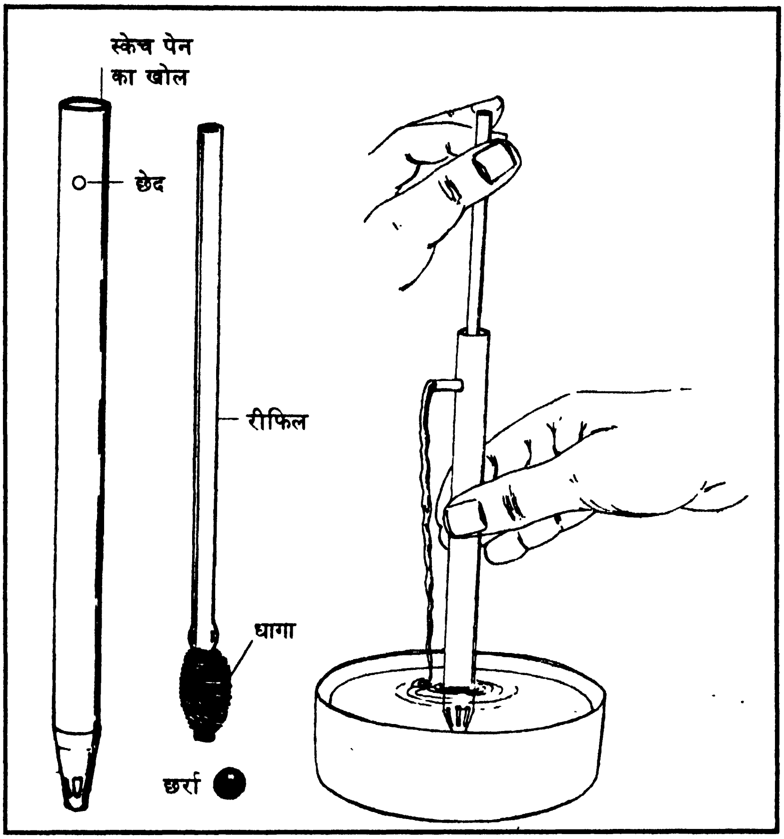

अब स्केच पेन के अंदर एक छर्रा (जो साइकिल वगैरह में लगा होता है) डालते हैं। रीफिल को स्केच पेन के अंदर डाल देते हैं। इस बात का ध्यान रहे कि धागा लिपटा हुआ हिस्सा पेन के अंदर हो।

यह हमारा हैंडपंप तैयार हो गया है। अब यह समझने की कोशिश करते हैं कि यह मॉडल वास्तविक पंप की तरह ही है या नहीं। हमारे मॉडल में स्केच पेन राइज़िंग पाईप है। रीफिल का बड़ा टुकड़ा कनेक्टिंग रॉड और रीफिल का छोटा टुकड़ा हैंडपंप की टोंटी है। रीफिल के लम्बे टुकड़े पर लपेटी गई धागे की मोटी परत वास्तव में पिस्टन है और स्केच पेन में डाला गया छर्रा चैक वाल्व की तरह कार्य कर रहा है। इस मॉडल में अलग से पिस्टन वाल्व नहीं है लेकिन पिस्टन और राइज़िंग पाईप के बीच इतना कम स्थान बचता है कि पिस्टन के ऊपर से हवा या पानी नीचे की ओर नहीं जा पाता।

हैंडपंप के इस मॉडल की जांच करने के लिए हम एक कटोरी या गिलास में पानी लेते हैं और पंप को उसमें अच्छी तरह से डुबो देते हैं। फिर पिस्टन को ऊपर-नीचे चलाते हैं। पांच-छह बार रीफिल को ऊपर-नीचे करने पर पेन के ऊपरी हिस्से में लगाए गए रीफिल के टुकड़े से पानी गिरने लगता है।

मॉडल: 2

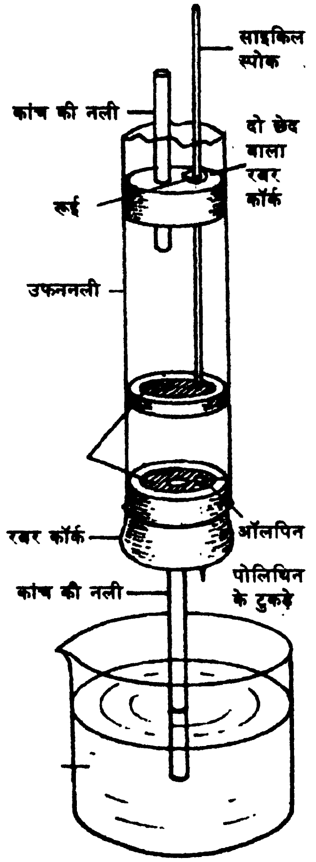

हैंडपंप का एक और मॉडल बनाने की कोशिश करते हैं। इसे बनाना थोड़ा कठिन है लेकिन इससे हैंडपंप का सिद्धांत बेहतर ढंग से समझ में आएगा। यह मॉडल मामूली चीज़ों के इस्तेमाल से बन जाएगा। जैसे टूटी हुई उफननली, एक छेदी और दो-छेदी रबर कॉर्क, साइकिल का स्पोक, कांच की नली, पोलीथीन के एक-दो गोल रंगीन टुकड़े, रूई, आलपिन आदि।

काम करते समय असावधानी के कारण कभी-कभी उफननली टूट जाती है। ऐसी ही एक टूटी उफननली से हम हैंडपंप बनाने की कोशिश करेंगे।

एक टूटी उफननली लीजिए और इसके भीतरी व्यास के नाप का, दो छेद वाले रबर कॉर्क का एक टुकड़ा काट लीजिए। इस टुकड़े को उफननली के मुंह की ओर से घुसाकर दूसरे सिरे तक धका देना है। रबर कॉर्क के दो छेदों में से एक छेद में कांच की नली पिरो दीजिए।

अब इस उफननली के भीतरी व्यास के नाप का रबर का एक छेदवाला कॉर्क लीजिए। इस कॉर्क के संकरे भाग से एक गोल चकती काटना है। अब इस चकती के नाप का पोलीथीन का एक गोल टुकड़ा काटकर चकती के ऊपर रख दीजिए। फिर चित्र में दिखाए ढंग से चकती में एक साइकिल स्पोक घुसाना है। यह पंप का पिस्टन बन गया। पिस्टन को उफननली के मुंह में इस तरह डालना है कि स्पोक ऊपर वाले दो छेदी कॉर्क के एक छेद से निकल जाए। इस छेद के आसपास रूई फंसा दीजिए। अब एक-छेदी कॉर्क के बचे हुए हिस्से के संकरे भाग पर पोलीथीन का एक टुकड़ा आलपिन से लगाना है। इस कॉर्क को उफननली के मुंह में फंसाकर कॉर्क के छेद में एक कांच की नली लगा दीजिए। आवश्यक हो तो इसे मोम से सील कर सकते हैं।

अब किसी बर्तन में पानी लीजिए। कांच की नली पानी में डुबोकर पिस्टन को ऊपर-नीचे कीजिए। चार-पांच बार पिस्टन ऊपर-नीचे करने पर ऊपरी नली से पानी गिरने लगेगा।

यदि पोलीथीन के टुकड़े रंगीन हों तो हम पिस्टन के ऊपर-नीचे जाने पर दोनों वाल्वों को खुलते और बंद होते हुए देख सकते हैं।

इस मॉडल को बनाने में लगने वाले रबर कार्क यदि नहीं मिल पा रहे हों तो चप्पल या स्लीपर का तला भी इस्तेमाल कर सकते हैं। लेकिन इसके लिए तले की मोटाई कम-से-कम आधा सेंटीमीटर रखना बेहतर होता है।

इस मॉडल में भी यह देखने की कोशिश कर सकते हैं कि इसमें राइज़िंग पाईप, कनेक्टिंग रॉड, पिस्टन वाल्व, चैक वाल्व वगैरह कौन-से हिस्से हैं।

हैंडपंप की कुछ आम समस्याएं

1. **वाशर खराब होना:** सिलिंडर में इस्तेमाल होने वाले वाशर चमड़े या नायलॉन के होते हैं। ये वाशर बहुत जल्दी गल जाते हैं या नरम पड़ जाते हैं। इस स्थिति में पिस्टन और सिलिंडर वाल्व की दीवार के बीच की जगह खुली रह जाती है जिसमें से ऊपर की हवा सिलिंडर में घुसती है। ऐसा होने से सिलिंडर के अंदर कम दबाव का क्षेत्र नहीं बन पाता है और पिस्टन ऊपर की तरफ खींचने पर भी चैक वाल्व बंद रहता है। इस कारण पंप से पानी नहीं मिल पाता। इसलिए यदि वाशर गल गए हों तो नए वाशर लगाना चाहिए और चैक वाल्व के साथ लगी रबर की सीटिंग भी बदल देनी चाहिए।

   वाशर बदलने के बाद सिलिंडर सही काम कर रहा है या नहीं, यह देखने के लिए सिलिंडर को पानी से भरी बाल्टी में डुबोकर पिस्टन चलाकर देखना चाहिए कि पिस्टन ठीक से काम कर रहा है या नहीं। सिलिंडर में कहीं से पानी तो नहीं चू रहा है?

2. **कनेक्टिंग रॉड के जोड़ खुलना:** हैंडपंप के अंदर सिलिंडर को पानी में उतारने के लिए काफी लंबी कनेक्टिंग रॉड लगानी पड़ती है। रॉड के छोटे-छोटे टुकड़ों को एक-दूसरे से चूड़ियों से कसकर लंबी कनेक्टिंग रॉड बनाई जाती है। कई बार किन्हीं दो रॉड के बीच की चूड़ियां ढीली पड़ने के कारण रॉड खुल जाती हैं। इस स्थिति में पिस्टन ऊपर-नीचे नहीं हो सकता और पंप से पानी आना बंद हो जाता है।

   ऐसी स्थिति में पंप को खोलकर बोर में डाले हुए पाईप और रॉड को निकाल कर यह देखते हैं कि कौन-सी रॉड खुल गई है। उस रॉड को फिर से कस देते हैं। यदि रॉड की चूड़ी ही खराब हो गई हो तो नई चूड़ियां बना सकते हैं या नया रॉड लगा देते हैं।

3. **पाईपों के जोड़ का खुलना:** कभी-कभी पाईपों के अंदर की कनेक्टिंग रॉड सही लगी रहती है लेकिन राइज़िंग पाइप के जोड़ खुल जाते हैं। राईज़िंग पाईप के खुलने के दो कारण हो सकते हैं — एक तो राइज़िंग पाईप के टुकड़ों को आपस में ठीक से कसा न गया हो जिससे कुछ समय बाद पाईप का कोई जोड़ ढीला होकर

निकल जाए। दूसरा कारण है कि लगातार पानी के बहाव के कारण जंग लगने से पाईप के जोड़ कमज़ोर हो जाते हैं।

इस स्थिति में खुले हुए जोड़ के नीचे जो भी पाईप है उनका सारा वज़न कनेक्टिंग रॉड और सिलिंडर पर आ जाता है। चूंकि सिलिंडर पाईप से कसा होता है इसलिए पंप का हैंडिल भारी चलने लगता है। हैंडिल चलाने पर पानी ऊपर तो उठता है लेकिन जहां से जोड़ खुल गया है वहां से लीक होकर बोर में गिरने लगता है। इन हालातों में पंप को ज़ोर लगाकर चलाने के बजाए पंप को खोलकर राइज़िंग पाईप के खुले हुए जोड़ को कसना चाहिए या खराब हुए पाईप को बदलना चाहिए।

जल स्तर नीचे चला जाना: कभी-कभी बोर में जल स्तर सिलिंडर से भी नीचे चला जाता है। इस स्थिति में पिस्टन चलाने पर भी इतना दबाव नहीं बन पाता कि पानी ऊपर लाया जा सके। ऐसी हालत में एक ही काम हो सकता है कि कुछ और राइज़िंग पाईप जोड़कर हैंडपंप के सिलिंडर को जल स्तर तक पहुंचा दिया जाए ताकि सिलिंडर पानी ऊपर फेंक सके। यहां इस बात का ध्यान रखना होगा कि यदि जल स्तर 180 फुट से नीचे चला गया है तो राइज़िंग पाईप जोड़ने से कोई फायदा नहीं होगा क्योंकि पंप इस गहराई पर काफी मुश्किल से ही पानी देता है।

कई बार यह भी होता है कि पानी बोर में से ही उतर गया है यानी बोर सूख गया है। बोर के सूख जाने पर राइज़िंग पाईप डालने से भी काम बनने वाला नहीं है। अब तो बोर को और गहरा करना ही एक मात्र उपाय है।

5. **सिलिंडर से पानी चूना:** कई बार पंप में बाकी सब तो ठीक होता है लेकिन फिर भी पानी बहुत कम मिलता है। इस स्थिति में सिलिंडर को बाहर निकालकर देखना चाहिए कि सिलिंडर में लीकेज तो नहीं है? यदि हो तो सिलिंडर के वाल्व की रबर सीटिंग को बदलना होगा।

6. **हत्था ढीला चलना:** ऐसा तब होता है जब हत्थे के एक्सल के नट ढीले हो गए हों या बॉल-बेयरिंग खराब हो गया हो। नए बेयरिंग डालने पर हत्था ठीक चलने लगेगा।

हैंडपंप में आने वाली खराबियों को दूर करने की बात करते हुए यह तथ्य सामने आता है कि हैंडपंप का सही रख-रखाव करना बहुत कठिन काम नहीं है। महत्वपूर्ण बात यह है कि हैंडपंप का इस्तेमाल करने वाले लोगों को (खासकर वे लोग जो पेयजल हैंडपंप से प्राप्त करते हैं) यदि हैंडपंप की ज़रूरी तकनीकी जानकारी दी जाए और कुछ ज़रूरी औज़ार-पुर्ज़े मुहैया कराए जाएं तो लोग पेयजल की ज़रूरत के लिए आत्मनिर्भर हो सकते हैं।

राजेन्द्र बंधु - समाज प्रगति सहयोग, देवास में कार्यरत। सुनील कटियार - पेशे से इंजीनियर, नई दिल्ली में रह रहे हैं।

* * *

विज्ञान गल्प

फुरसती वैज्ञानिक क्लब की एक और खोज

डाइनोसौर का अंडा

बरट्रैण्ड आर. ब्रिनले

भावानुवाद: सुशील जोशी

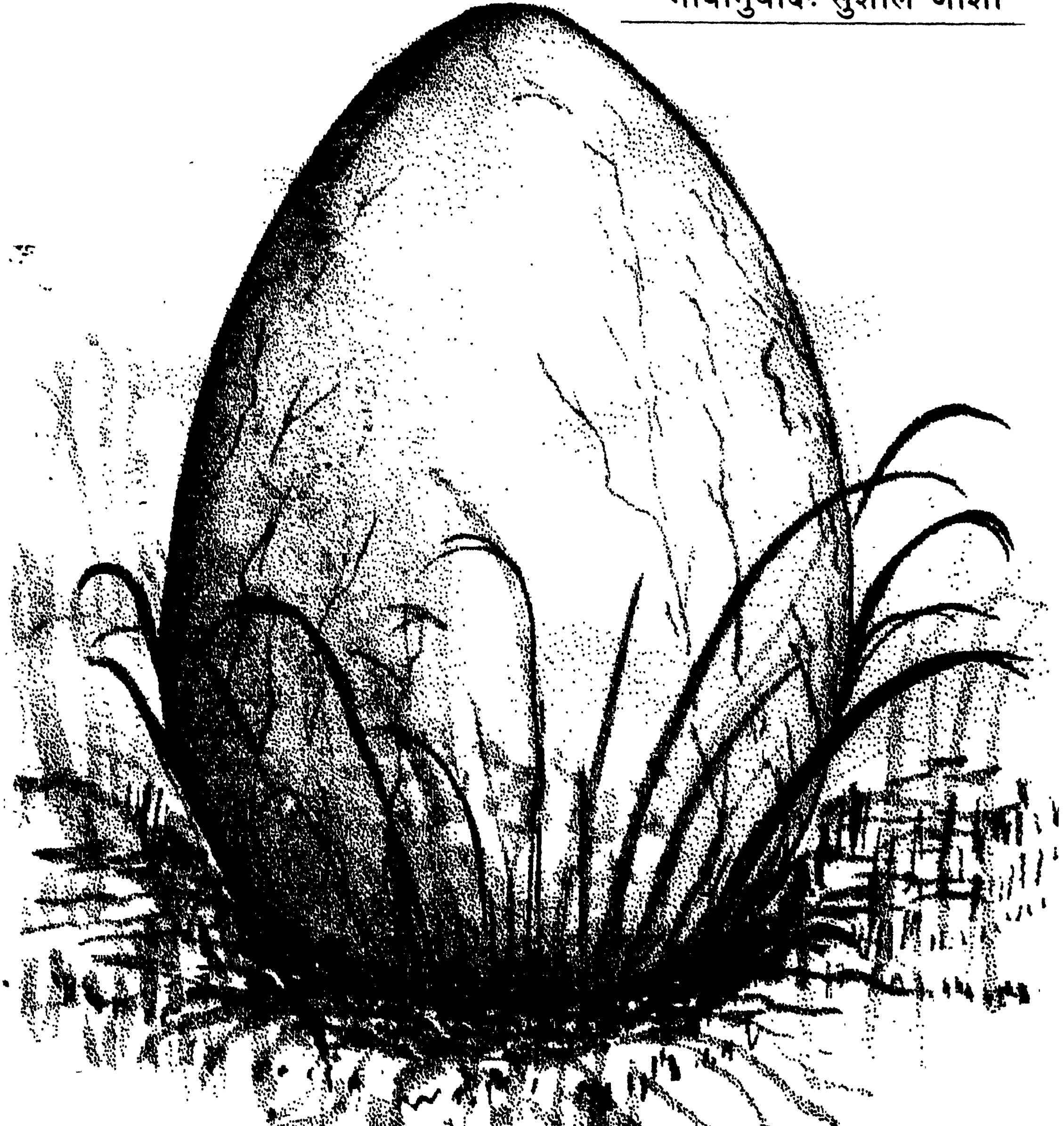

यूं तो फुरसती वैज्ञानिक क्लब के लोगों को कोई न कोई खुराफात सूझती ही रहती है। लेकिन इस बार बात कुछ अलग थी। क्लब के सदस्यों को मानसरोवर झील के किनारे के दलदल में एक अंडा मिला – वो था डाइनोसौर का अंडा। लेकिन इसे लेकर भी क्या-क्या गुल खिले वो भी कम मज़ेदार नहीं थे।

यदि फुरसती वैज्ञानिक क्लब के उपाध्यक्ष रामनिवास और बम्बई के उस वैज्ञानिक डॉ. पुराजाने की बात सच मान ली जाए तो हो सकता है कि इस वक्त पचमढ़ी की घाटियों में मानसरोवर झील के आसपास एक अजीबो-गरीब प्राणी अठखेलियां कर रहा हो। दरअसल उस दिन जब फुरसती वैज्ञानिक क्लब के सदस्य अपने कबाड़-खाना दफ्तर में मेज़ पर रखी उस फुटबॉलनुमा चीज़ को देख रहे थे तब उन्हें अन्दाज़ नहीं था कि आगे का घटनाक्रम इतना रोमांचक होने वाला है।

"रामनिवास तुमने इसे कितना पुराना बताया था?" गयादीन ने पूछा। "शायद 15 करोड़ बरस" रामनिवास ने गम्भीरता से कहा। जीतू को लग रहा था कि यह कोरी बकवास है। भला इतनी पुरानी भी कोई चीज़ होती है। परन्तु रामनिवास का कहना था कि यह चीज़ वास्तव में किसी डायनोसौर का अण्डा था। कल दिन भर उसने हमें मानसरोवर के किनारे दलदल में खुदाई पर लगाए रखा था। कई फुट गहरा गड्ढा खोदने के बाद यह चीज़ निकली थी, जो अब बल्ब की हल्की रोशनी में थोड़ी डरावनी-सी हमारे सामने थी। सवाल यह था कि इसका करें क्या? इसहाक का खयाल था कि इसकी प्रदर्शनी करना चाहिए और हर नागरिक से एक रुपया लेना चाहिए, जैसे कई बार दो मुंह वाली गाय का लगता है।

परन्तु रामनिवास का कहना था कि ऐसा सोचना ठीक नहीं है। "यह एक वैज्ञानिक खोज है। इससे कोई पैसा नहीं बनाया जाता। हमें इसे वैज्ञानिकों के सामने रखना चाहिए।" थोड़ा सोचकर रामनिवास ने कहा कि उसके दिमाग में एक विचार आ रहा है। फुरसती वैज्ञानिक क्लब के सभी सदस्य जानते थे कि जब रामनिवास के मन में कोई विचार आए तो तुरन्त नींद पूरी कर लेनी चाहिए क्योंकि रामनिवास का विचार, मतलब भागदौड़ शुरू। सो अण्डे को अलमारी में बंद करके सब सोने चले गए। बस रामनिवास ही कबाड़े को घूरता बैठा रहा।

अगले दिन सुबह फिर महफिल जम

गई। सब रामनिवास की ओर ताक रहे थे। उसने पहले तो यह बताया कि उसने बम्बई के एक म्यूज़ियम को पत्र लिखा है। यह म्यूज़ियम दुनिया भर के प्राणियों, उनके प्राचीन अवशेषों आदि का संग्रह करता है। उसने पत्र में अण्डे का आकार, रंग, वज़न और सारी बातें लिख दी थीं। साथ में अण्डे के फोटो थे और अण्डे के आसपास मिली किरचें भी थीं। सबको एक डिब्बे में सजाकर म्यूज़ियम को भेजने का इन्तज़ाम कर दिया गया।

अब बारी आई अण्डे की। रामनिवास का कहना था कि आखिर में तो हमें यह अण्डा म्यूज़ियम को देना ही पड़ेगा। मगर क्यों न हम इसे सेने का इन्तज़ाम करें और बच्चा पैदा करवाएं।

"क्या? सचमुच का डायनोसौर?" यह सवाल था क्लब के एक नए सदस्य नवनीत का। रामनिवास ने उसे गम्भीरता से समझाया कि जहां तक वह जानता है डायनोसौर के अण्डे में से डायनोसौर ही निकलता है।

"तो उसे खिलाओगे क्या?" नवनीत ने अपनी चिंता बताई। खैर, धीरे-धीरे क्लब के सभी सदस्य राजी हो गए कि जब तक म्यूज़ियम वाले अण्डा लेने नहीं

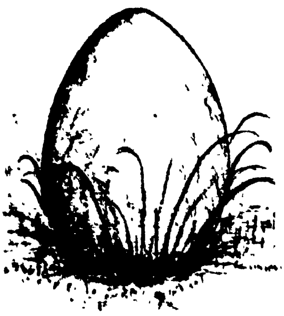

आते तब अण्डे से निकालने की कोशिश करने में कोई हर्ज़ नहीं है। तो अण्डे को अलमारी में से निकाला गया। जीतू ने कहा कि कल रात यह बहुत भारी लग रहा था। जिस पर रामनिवास ने उसे समझाया, "कल रात तुम थके हुए थे, इसलिए।" अण्डे को फिर मेज़ पर विराजमान कर दिया गया। दिन की रोशनी में वह उतना डरावना भी नहीं लग रहा था।

अब सवाल आया कि क्या 15 करोड़ साल पुराना यह अण्डा सड़ नहीं गया होगा। वैसे किसी को इस बारे में कोई जानकारी नहीं थी पर इतना ज़रूर रामनिवास ने बताया कि एक-डेढ़ हज़ार साल पुराने अण्डों में से मगरमच्छ पैदा हो जाते हैं।

खैर उस अण्डे को वापस उसकी पुरानी जगह ले जाया गया और ठीक से जमा दिया गया। जगह की पहचान के लिए कुछ स्काऊटनुमा निशान लगा दिए गए। सब लौट आए। किसी को पता नहीं था। डायनोसौर के 15 करोड़ बरस पुराने अण्डे में से बच्चा निकलने में कितने दिन लगेंगे। शायद बरसों लग जाएं।

परन्तु जीतू और इसहाक बरसों हाथ-पर-हाथ धरे इन्तज़ार करने वाले नहीं थे। अगले ही दिन सुबह वे उसी जगह जा पहुंचे। बड़ी मुश्किल जगह थी। झाड़-झंखाड़ में से अपने लगाए निशानों की मदद से जब वे उस जगह पहुंचे तो जीतू के दिल की धड़कन रुक गई। इसहाक को काटो तो खून नहीं। अण्डा वहां नहीं था। जब वापस होश में आए तो भागे कबाड़खाने की तरफ। हांफते-हांफते दूर से ही चिल्लाए, "अण्डा गायब है।"

जीतू और इसहाक ने अचरज से रामनिवास की ओर देखा। जीतू पत्रकार-नुमा अन्दाज़ में बोला, "अण्डा रहस्यमय ढंग से गायब हो गया है।"

सबको लगा कि जल्दी वहां पहुंचना चाहिए। सिर्फ रामनिवास को कोई जल्दी नहीं थी। वह अपनी साइकिल की सफाई में मशगूल था। बड़ी मुश्किल से उसे ठेला गया।

फिर वही यात्रा शुरू हो गई। टेढ़े-मेढ़े दलदली रास्ते से, झाड़-झंखाड़ से जूझते हुए, फिसलते-संभलते हुए पूरा दल आखिर वहां पहुंच गया। एक बार फिर जीतू और इसहाक की सांस ऊपर-की-ऊपर, नीचे-की-नीचे रह गई। अण्डा वहां मौजूद था। सब सदस्य उन दोनों पर बरस पड़े कि ये सब जासूसी टी.वी. सीरियल देखने का नतीजा है कि उन्हें उल्टे-सीधे विचार आते रहते हैं।

परन्तु जीतू और इसहाक ने कहा कि जब वे आए थे तब अण्डा गायब था और अब किसी ने लाकर वापस रख दिया है। हो न हो यह बदलू की करतूत है। बदलू, जैसा कि सब जानते हैं, क्लब से निकाल दिया गया था और अब वह क्लब को नीचा दिखाने के लिए ऐसी करतूतें किया करता है।

इधर जीतू और इसहाक लगे थे अपनी

सफाई देने में और उधर रामनिवास अण्डे को हाथ में लेकर लैंस से उसका अवलोकन कर रहा था। रामनिवास जब भी किसी चीज़ को ध्यान से देखता तो कहता अवलोकन कर रहा हूं। थोड़ी देर देखने के बाद उसके ओंठ मुस्कराने लगे। गयादीन ने उसे मुस्कराते देखा, तो पूछ लिया, "क्यों, क्या डायनोसौर दिखने लगा है।" रामनिवास को भान नहीं था कि कोई उसे देख रहा है। वह थोड़ा सकपका गया। बोला, "नहीं, कुछ नहीं, सब ठीक है।" अण्डे को वापस जमा दिया गया।

रामनिवास के लिए 'सब ठीक' हो सकता था, मगर जीतू, इसहाक और नवनीत के हिसाब से सब ठीक नहीं था।

बल्कि उन्हें तो रामनिवास का व्यवहार थोड़ा अजीब लग रहा था। उन्होंने सच्चाई का पता लगाने का फैसला कर लिया। उन्हें पूरा शक था कि करतूत बदलू की ही है। अतः उन्होंने बदलू और उसकी विज्ञान सभा पर नज़र रखना तय किया।

बदलू की विज्ञान सभा उनके कबाड़खाने से ज़्यादा दूर नहीं थी। बस सीधे जाकर बरगद के पेड़ के पास बाएं मुड़कर जो पुरानी-सी इमारत थी उसी में बदलू की विज्ञान सभा का दफ्तर था। सामने एक बंगला था जहां कोई नहीं रहता था। वहां बैठकर आसानी से विज्ञान सभा पर नज़र रखी जा सकती थी।

तो तीनों वहां जाकर जम गए। थोड़ी देर में क्या देखते हैं कि बदलू का साथी बेनीप्रसाद एक बाल्टी लेकर बाहर आया और बाल्टी में से कुछ चीज़ें कचरे के डिब्बे में डाल दीं। फिर बाल्टी के अन्दर चिपकी परत को भी खुरच-खुरच कर फेंक दिया। सफेद-सफेद कुछ था। जब बेनीप्रसाद अन्दर चला गया तो जीतू से न रहा गया। वह

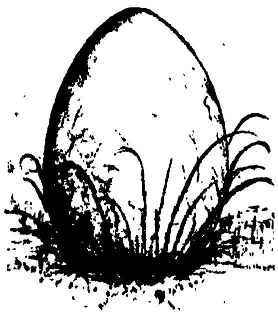

कूदते फांदते विज्ञान सभा के रोशनदान की तरफ वाले छज्जे पर जा पहुंचा। रोशनदान में से जो कुछ उसने देखा वह बताने को जीतू उतावला हो रहा था और बदलू और बेनी थे कि हटने का नाम ही नहीं ले रहे थे। खैर, थोड़ी देर बाद वे दोनों बाहर से ताला लगाकर चले गए। अब जीतू वापस नवनीत और इसहाक के पास जा पहुंचा और पूरा नज़ारा बयान कर दिया। अब वे तीनों अन्दर पहुंचने की जुगाड़ करने लगे। किसी प्रकार से नवनीत को रोशन-दान में से अन्दर किया गया। उसने अन्दर जाकर खिड़की खोली और जीतू व इसहाक भी अन्दर दाखिल हुए। जीतू ने अपनी टॉर्च चलाई और रोशनी मेज़ पर डाली। वह अण्डा शान से उस मेज़ पर रखा था। अब वे तीनों इधर-उधर नज़र दौड़ाने लगे। वहीं उन्हें प्लास्टर ऑफ पेरिस की दो नाव जैसी दिखीं। ध्यान से देखने पर पता चला कि वह एक सांचा था। यानी बदलू ने अण्डे का सांचा बनाया और उसे चुपके से झील के पास दलदल में रखे अण्डे से बदल दिया।

अब क्या किया जाए? हमारी तिकड़ी ने तय किया कि बदलू को झांसा देने का

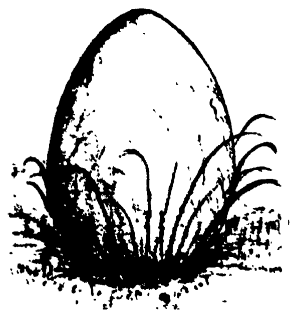

अच्छा मौका है। वह समझ रहा है कि अब असली अण्डा उसके पास है। हम यदि अण्डा बदल दें तो उसे पता भी नहीं चलेगा। तो मेज़ पर रखे उस अण्डे को एक मोटे झोले में डालकर जीतू और इसहाक चल दिए। उधर नवनीत को निगरानी के लिए छोड़ दिया।

दो घन्टे तो उन्हें दलदल तक पहुंचने में लगे। फिर अण्डा बदलकर यानी असली अण्डा दलदल में रखकर नकली अण्डा वापस लाने में दो घन्टे और लग गए। वापस पहुंचे देर रात। देखा तो नवनीत का कहीं पता न था। दोनों ने सोचा कि पहले अण्डे को वापस मेज़ पर रख दें तो फिर नवनीत को ढूंढा जाए। मन में यह डर भी था कि कहीं इस बीच बदलू को पता न चल गया हो। खैर डरते-डरते अन्दर घुसे। अण्डे को मेज़ पर रखा ही था कि अंधेरे में आवाज़ आई, "बहुत देर लगा दी तुम लोगों ने?"

अब दोनों के पैर जम गए। संभलते-संभलते जीतू ने टॉर्च जलाकर रोशनी इधर-उधर फेंकी तो देखा कि उसी बाल्टी को औंधा रखकर उसके ऊपर रामनिवास बैठा है। जीतू सोचने लगा कि यह रामनिवास यहां कैसे आया? इसे कैसे मालूम पड़ा? कहीं ये ...पर उसने विचारों पर रोक लगाई।

जीतू ने बस इतना ही पूछा, "तुम यहां कैसे पहुंचे?" रामनिवास ने कहा, "वह सब छोड़ो। अण्डे को मेज़ पर रख दो और चलो यहां से।"

जीतू का अचरज बढ़ता जा रहा था। उसने कहा, "पर यह असली अण्डा नहीं है। असली अण्डा यहां मेज़ पर था। हमने उसे ले जाकर सही जगह रख दिया और वहां से यह नकली अण्डा उठा लाए हैं, जो बदलू ने वहां रखा था।"

"हो गया अब, चलो जल्दी यहां से।" रामनिवास ने फिर से कहा।

इसके बाद तो रामनिवास का व्यवहार एकदम ही बदल गया। वह बस दिन भर कबाड़खाने में बैठा रहता और अपने उसी ट्रांसमीटर से खेलता रहता, जिससे उन लोगों ने मानसरोवर का दैत्य चलाया था। अण्डे के बारे में कोई पूछता तो वह बात आगे बढ़ने से पहले ही कह देता कि, "अण्डा ठीक है, चिन्ता मत करो।" परन्तु रामनिवास की चुप्पी ज़्यादा न चल सकी। डायनोसौर के अण्डे की खबरों को पर लग चुके थे।

एक खबरची पचमढ़ी आ पहुंचा। उसे 'दैनिक खबरदार' ने वहां भेजा था। उन्हें बम्बई के म्यूज़ियम से खबर मिली थी कि फुरसती वैज्ञानिक क्लब के अण्डे (अण्डा तो वास्तव में डायनोसौर का था) को देखने म्यूज़ियम एक विशेषज्ञ को भेज रहा है। विशेषज्ञ का नाम डॉ. पुराजाने है। इसलिए वह खबरची पहले ही आ गया था। अगले दिन डॉ. पुराजाने भी आ पहुंचे।

अब हमारे नगरपालिका अध्यक्ष श्री सदरनारायण की नींद टूटी। उन्हें अचानक

पचमढ़ी ज़्यादा अच्छा लगने लगा और रामनिवास तो उनका चहेता बन गया। डॉ. पुराजाने के साथ दो-चार खबरची और भी थे। सब लोग फुरसती वैज्ञानिक क्लब के कबाड़खाने में जमा हो गए। बदलू और बेनीप्रसाद भी थे। बदलू हौले-हौले मुस्करा रहा था, बेनीप्रसाद उचक-उचक कर डॉ. पुराजाने की ओर ताक रहा था।

अब डॉ. पुराजाने ने कहा, "प्रोफेसर रामनिवास (क्लब के सदस्यों ने बड़ी मुश्किल से अपनी हंसी रोकी) आपके द्वारा भेजी गई किरचों की हमने गहन वैज्ञानिक जांच की। हमने कार्बन डेटिंग के अलावा यूरेनियम विधि से भी उन किरचों की जांच की। हमें विश्वास है कि वे किरचें अवश्य ही जुरासिक काल की हैं।"

सदरनारायण जी आश्चर्य से भर गए, "जुरासिक काल की? मगर यह रामनिवास तो कह रहा था डायनोसौर की हैं?"

डॉ. पुराजाने ने उन्हें विस्तार से समझाया कि जुरासिक काल का अर्थ क्या है और डायनोसौर उस काल में पृथ्वी पर थे।

उधर दैनिक भागमभाग के पत्रकार ने यूरेनियम का नाम सुना और उसके कान खड़े हो गए। उसने तुरन्त पूछा लिया कि इस अण्डे में युरेनियम होने से पचमढ़ी के निवासियों को कोई खतरा तो नहीं है।

इस सबसे निपटकर डॉ. पुराजाने ने प्रोफेसर रामनिवास से कहा कि अब अण्डा देख लेना चाहिए। डॉ. पुराजाने का इतना कहना था कि बस पूरा शहर झील के पीछे जाने वाले रास्ते पर चल पड़ा। आगे-आगे सदरनारायण थे। वे बार-बार रामनिवास की पीठ थपथपाते जा रहे थे, उसके सिर पर हाथ फेरते जा रहे थे। उन्होंने हाथ फेर-फेरकर रामनिवास के बाल इतने उलझा दिए थे कि वह सचमुच 'प्रोफेसर' दिखने लगा था। वैसे सदरनारायण जी दैत्य वाली बात भूले नहीं थे मगर इस बार तो डॉ. पुराजाने के आ जाने से फुरसती वैज्ञानिक क्लब की धाक जम गई थी।

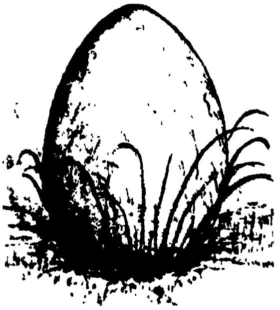

झील के किनारे पहुंचकर सदरनारायण जी ने भाषण दिया और सब लोगों से कहा कि वे वहीं रुकें। कुछ ही लोग अण्डा देखने को जाएंगे। फुरसती वैज्ञानिक क्लब के सदस्य, डॉ. पुराजाने, पत्रकार, बदलू, बेनीप्रसाद और खुद सदरनारायण जी चल पड़े। पेंट के पायंचे ऊपर उठाकर, बड़ी-बड़ी मुश्किल से कदम जमा-जमाकर, फिसलते-फिसलते, यह दल उस ओर चला। सबसे आगे जीतू और इसहाक थे। वे तो सुबह से ही खूब जोश में थे। अण्डे के स्थान पर पहुंचना था और वे चीख पड़े। "बच्चा अण्डा फोड़कर निकल गया है।" बदलू बेनीप्रसाद की ओर देखकर मुस्करा दिया। मगर जीतू ने देखा कि उन दोनों को देखकर रामनिवास भी रहस्यमय ढंग से मुस्करा रहा है।

फूटे हुए अण्डे के पास सबको जाने

से रोक दिया गया क्योंकि हो सकता है कि बच्चा आसपास ही हो। सिर्फ रामनिवास और डॉ. पुराजाने ही आगे बढ़े। जीतू दूर से ही देखकर चिल्लाया, "सबने देखा कि एक जानवर के पैरों के निशान दलदल में साफ दिखाई पड़ रहे थे। कुछ दूर जाकर निशान गायब हो गए थे क्योंकि उधर रेत सूखी थी।"

डॉ. पुराजाने ने अपना लेंस निकाला और उन निशानों को ध्यान में देखने लगे। काफी समय तक देखते रहने (रामनिवास के अनुसार अवलोकन करने) के बाद वे अण्डे की तरफ मुड़े। उन्होंने पहले अण्डे के फोटो खींचने को कहा। जब हर तरफ से अण्डे और उन निशानों के फोटो खिंच गए तब उन्होंने फूटे अण्डे को हाथ में लिया। ध्यान से देखने के बाद मुस्कराने लगे। अब जीतू को हर व्यक्ति की मुस्कराहट रहस्यमई लगने लगी।

मुस्कराते हुए डॉ. पुराजाने ने कहा, "बहुत बढ़िया, बहुत बढ़िया, मगर नकली।" उन्होंने अण्डे के छिलके का एक टुकड़ा लिया, ध्यान से देखा और चुटकी में मसल दिया, "शुद्ध प्लास्टर ऑफ पैरिस।"

हम सबको तो जैसे सांप सूंघ गया। सदरनारायण हमें घूर रहे थे, पत्रकार हिकारत से देख रहे थे और बदलू मज़ा ले रहा था। डॉ. पुराजाने फिर पंजों के निशान की ओर बढ़े। बोले, "किसी ने बहुत सफाई से नन्हें ब्रॉन्टोसौर के पंजों की नकल बनाई है। मगर एक जगह चूक गया। ब्रॉन्टोसौर की पूंछ हमेशा ज़मीन से घिसटती रहती थी। इस नकल में पूंछ का निशान बनाना नकलची भूल गया।"

फिर सबकी तरफ मुड़कर कहा, "प्राणी विज्ञान के क्षेत्र में तो हमें ऐसी जालसाजी का रोज़ सामना करना पड़ता है। मगर यहां कुछ घपला है क्योंकि जो किरचें हमें मिली थीं वे यकीनन जुरासिक काल की थी।" एक पत्रकार ने कहा, "हो सकता है कि इन लड़कों को सिर्फ वे किरचें मिली हों और इन्होंने अण्डे का किस्सा गढ़ लिया हो।"

तभी बदलू बोल उठा, "जी नहीं, असली अण्डा हमारे पास है। हमने ही अण्डा खोजा था, वह हमारी विज्ञान सभा में रखा है।" बदलू की आंखों में जीत की चमक थी।

जीतू को लग रहा था कि इस बार बदलू बाजी मार ले गया। और उसने रामनिवास की तरफ देखा तो वही रहस्यमई मुस्कराहट। अब पूरा दल विज्ञान सभा के दफ्तर की ओर चल पड़ा। चलने से पहले रामनिवास अण्डे के पास गया और झुककर कुछ उठाकर जेब में डाल लिया।

सदरनारायण जी ने डॉ. पुराजाने को बताया कि बदलू काफी होशियार लड़का है। अब वे बन्लू के बाल सहलाकर उसे प्रोफेसर बनाने पर तुले थे। कुछ ही समय बाद पूरा दल बदलू की विज्ञान सभा में हाजिर था। और वहां मेज पर रखा था वह अण्डा।

डॉ. पुराजाने एक बार फिर लैंस लेकर 'अवलोकन' करने लगे। बदलू और बेनीप्रसाद उनके आसपास ही खड़े थे।

सदरनारायण जी थोड़ी दूर पड़ी उसी बाल्टी पर बैठ गए। फुरसती वैज्ञानिक क्लब के सदस्य मुंह लटकाए आसपास खड़े तमाशा देख रहे थे। बस रामनिवास सक्रिय था। डॉ. पुराजाने के करीब जाकर उसने कहा, "क्यों न इस अण्डे को वहां खिड़की के पास रोशनी में ले चलें?" डॉ. पुराजाने ने 'हां' कर दिया। रामनिवास ने तत्काल अण्डे को उठा लिया और खिड़की की तरफ चलने लगा। उधर बदलू ने भी हाथ बढ़ाया, अण्डे को उठाने के लिए। रामनिवास सीधा बदलू से टकराया और अण्डा... अण्डा उसके हाथ से फिसल गया। फिसलकर अण्डा फर्श पर गिरा और फूट गया। बदलू कूदकर वहां पहुंचा। रामनिवास माफी वगैरह मांगने लगा।

तभी फूटे अण्डे में एक चमकदार चीज़ की झलक दिखी। बदलू ने तुरन्त उसे उठा लिया और बोल पड़ा, "यह तो मेरी अंगूठी है, उस दिन खो गई थी जब मैं बाल्टी में...?"

बदलू सोच में पड़ गया, "मगर वह अण्डा जो दलदल में रखा था...?"

रामनिवास बोला, "वह नकली था।"

अब डॉ. पुराजाने से न रहा गया, बोले, "सब साफ-साफ बताओ।"

जीतू जैसे नींद से जागा, "रामनिवास क्या उस रात को हम प्लास्टर ऑफ पैरिस लेकर भागदौड़ कर रहे थे।"

बदलू बोला, "अच्छा बेवकूफ बनाया। मुझे तो लगा था कि तुमने सचमुच डायनोसौर का अण्डा खोज लिया था।"

रामनिवास ने उसे घूरकर कहा, "सो तो हमने खोजा ही था और अभी भी वह हमारे पास है।"

यह तो जैसे बम गिरा हो। सबको डायनोसौर सूंघ गया। (यह मानकर कि डायनोसौर सूंघ सकता था!)

सबसे पहले बोलने वाले डॉ.पुराजाने थे। "तो प्रोफेसर रामनिवास, देर किस बात की? चलिए असली अण्डा देख लिया जाए।"

रामनिवास ने जब बताया कि असली अण्डा तो वहीं दलदल में एक अन्य स्थान पर है तो सदरनारायण जी घबरा गए कि अब फिर वहीं कीचड़ में पैर धंसाना होंगे।

जैसे भी हो, पूरा दल फिर दलदल की ओर चल पड़ा। इस बार रामनिवास उस स्थान की ओर मुड़ने की बजाए सीधा चलता गया और थोड़ा आगे जाकर एक जगह ढलान पर उतर गया। पीछे-पीछे पूरा जुलूस था ही। और वह असली अण्डा वहां रखा था, बगैर किसी खतरे के।

डॉ. पुराजाने ने फिर वही किया। पहले फोटो, फिर लेंस। फिर अण्डे को हाथ में लेकर देखा, और बोले, "हां यह असली है।" उधर रामनिवास ने सबकी आंख बचाकर कोई चीज़ अण्डे के नीचे से उठा ली। परन्तु खबरची ने देख लिया। "वह क्या है?"

तब रामनिवास ने पूरी कहानी बताई। उसने बताया कि पहली रात ही उसे मन

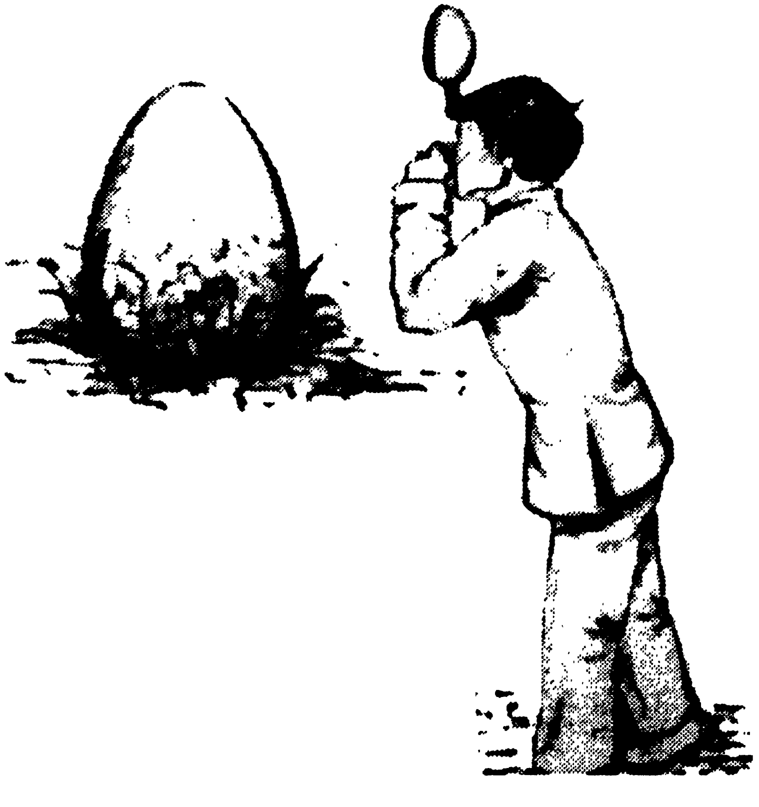

में शक था कि कोई न कोई इस अण्डे को ज़रूर चुराने की कोशिश करेगा। (सदरनारायण जी ने घूरकर बदलू की ओर देखा।) इसलिए उसने उसी रात अण्डे का प्लास्टर मॉडल बना लिया था। रात को ही जाकर उसने अण्डे को छुपाकर रख दिया था। सुबह जो अण्डा रखा गया वह तो नकली था।

"तभी वह थोड़ा हल्का लग रहा था।" जीतू बोल उठा। और उस अण्डे के नीचे रामनिवास ने एक इलेक्ट्रॉनिक यंत्र फिट कर दिया था। जैसे ही कोई अण्डे के साथ छेड़छाड़ करता तो उसे पता चल जाता।

"अच्छा तो इसीलिए तुम इतने निश्चित वहां कबाड़ खाने में बैठे रहते थे।"

"परन्तु ये यहां से क्या उठाया आपने?" खबरची से रहा न गया।

"ओह! ये? प्लास्टर मॉडल बनाते समय मैंने उसके अन्दर एक छोटा सा ट्रांसमीटर डाल दिया था। इस नकली अण्डे को जहां भी ले जाया जाता, मुझे घर बैठे मालूम पड़ जाता।"

"तभी तुम्हें पता चल गया था कि उस रात हम अण्डा उठाकर बदलू के दफ्तर में ले गए थे।"

"पर इतना सब करने की ज़रूरत क्या थी? सीधे हमें असली अण्डे की जगह क्यों नहीं ले गए?"

रामनिवास इस सवाल पर गम्भीर हो गया। उसने कहा, "यदि मैं ऐसा करता, तो इतना मज़ा कैसे आता? और पूरी कहानी पता कैसे चलती?"

डॉ. पुराजाने काफी प्रभावित थे। बोले, "हमारे म्यूज़ियम को बहुत खुशी होगी यदि यह अण्डा आप हमें दे दें।"

रामनिवास बोला, "पर पहले हमें अनुमति दीजिए कि हम इससे बच्चा निकालने का प्रयोग कर लें।"

डॉ. पुराजाने ज़ोर से हंस पड़े। हंसते-हंसते बोले, "मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" सो अण्डा वहीं छोड़कर सब वापस चल दिए।

आगे की कहानी ऐसी है कि जीतू ने एक दिन आकर बताया कि अण्डा फूट गया है। बच्चा निकल गया है। हम सब वहां पहुंचे तो देखा फूटा अण्डा अपनी जगह पड़ा है। पास ही किसी जानवर के पदचिन्ह भी थे। जीतू ने चीखकर कहा, "देखो इन निशानों में पूंछ का निशान भी है।"

तो क्या डायनोसौर बन गया? रामनिवास कहता है कि वह पक्के तौर पर कुछ नहीं बता सकता। और जहां तक डॉ. पुराजाने का सवाल है तो हमें यकीन है कि यह सब सुनकर वे ठहाका लगा देंगे।

यह भावानुवाद बरट्रैण्ड आर. ब्रिनले की पुस्तक 'मैड साइंटिस्ट क्लब' की एक कहानी पर आधारित है।

* * *

एक परजीवी यह भी

पेड़-पौधों में परजीवी का नाम लें तो अमरबेल की छवि एकदम से मन में कौंध जाती है – पीले-पीले से खूब सारे रेशेनुमा तंतु, किसी भी पेड़ की शाखाओं, पत्तियों में उलझे हुए। फिर ख्याल आता है कि अमरबेल के अलावा और भी ऐसे परजीवी होते ही होंगे, और वे सब भी शायद इस जैसे दिखते होंगे।

पर अगर आपको कोई बताए कि चंदन का पेड़ परजीवी है तो क्या आप यकीन करेंगे?! स्वाभाविक सवाल उठता है कि आखिर 30-40 फुट का ऊंचा बड़ा-सा दिखने वाला चंदन का पेड़ परजीवी कैसे हो सकता है। और यह भी कभी सुना, देखा नहीं कि चंदन के पेड़ की डालियां अमरबेल की तरह दूसरे पेड़ों से लिपटकर रस चूस रही हों उनका!

चाहे आपको यह विचार तनिक भी न भाए कि चंदन की सौंधी सुगंध देने वाली लकड़ी एक परजीवी पेड़ से मिली है, पर हकीकत यही है। चंदन के पेड़ की जड़ें ज़मीन के अंदर फैलकर कुछ खास किस्म के अन्य पेड़-पौधों की जड़ों से जा चिपकती हैं और उनमें से चंदन के पेड़ के इस्तेमाल के लिए पोषक तत्व खींचने लगती हैं। और यह काम करती हैं जड़ों से निकली घंटीनुमा रचनाएं। जिन्हें चूसक-जड़ें या हाउस्टेरिया भी कहा जाता है। अपने मेजबान की जड़ों से ये घंटीनुमा चूसक जड़ें जा चिपकती हैं।

पर साथ ही यह जानना भी ज़रूरी है कि चंदन पूर्ण परजीवी नहीं है यानी कि अपनी सब ज़रूरतों के लिए वह अन्य पेड़ों पर निर्भर नहीं, कुछ खनिज लवण व पोषक तत्व वह अपने मेजबान से खींच लेता है और कुछ अन्य सीधे ही ज़मीन से भी सोखता है। चंदन खुद अपना भोजन बना पाए इसके लिए बहुत ज़रूरी हैं ये लवण और पोषक तत्व, इसलिए अलग-थलग एकदम स्वतंत्र खड़ा चंदन का पेड़ ज़िंदा नहीं रह सकता।

अपनी शुरुआती ज़िंदगी का पहला साल चंदन का पौधा अपने खुद के बल पर खींच सकता है यानी कि अपने बचपन में चंदन स्वतंत्र रूप से जी सकता है। परन्तु उसके बाद ज़िंदा रहने के लिए चंदन के पेड़ के आसपास शीशम, शिरीष, यूकेलिप्टस, रीठा, कीकर, बबूल, करंज, लेंड़िया, साल, अर्जुन, बहेड़ा, हर्रा, खेर जैसे अन्य पेड़-पौधे हों यह निहायत लाज़िमी है।

अगर आपको अपने बगान-बगीचे में चंदन का पेड़ लगाना हो तो याद रखिएगा कि इनमें से कुछ पेड़-पौधे ज़रूर लगाने पड़ेंगे नहीं तो बचपन में ही दम तोड़ देगा वह!

चंदन का वयस्क पेड़; (इन्सेट) चंदन का पौधा

12775